जैन भारती 卐

(भारतीय संस्कृति की पोषक)

लेखक

शादीलाल जैन

प्रिंसिपल

जैन समनोपासक हायर सेकेण्डरी स्कूल

सदर बाजार, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक

आदीश्वरलाल जैन

एम. ए.

डी-२/८, माडल टाउन, दिल्ली-११०००६

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर ऐसी परिणति हो जावे ॥

प्रस्तावना

भगवान् महावीर केवल जैनो के लिये ही नही अपितु समस्त ससार के लिये वदनीय हैं। आज से 2500 वर्ष पूर्व भारत के इस महा मानव ने अहिंसा और सत्य के माध्यम से अनंत तथा स्थायी सुख और शान्ति प्राप्त करने का उपदेश दिया था जिस पर मनुष्य समाज आज भी आचरण करके इस भूतल को स्वर्गतुल्य बना सकता है।

भगवान् महावीर के 2500 वे निर्वाणाब्द पर समस्त ससार के जैनो में एक विशेष धर्म-प्रेम, स्फूर्ति और कार्य-कुशलता देखने में आई। फलस्वरूप भारत के समस्त राज्यो मे प्रदेश समितियाँ गठित की गई जिनके प्रमुख समाज सेवी तथा प्रमुख राज्याधिकारी सदस्य बने। जिनका उद्देश्य था इस सुअवसर पर भगवान् महावीर स्वामी के सदेश को जन-जन तक पहुँचाना। अत: दिल्ली प्रदेश मे भी 2500 वी भगवान् महावीर निर्वाण समिति बनाई गई। ला० डिप्टीमल जी जैन इसके उपप्रधान बने। वह तन, मन और धन से इस सुकार्य मे लगे। अनेक योजनाओ मे उनकी एक यह भी योजना थी कि भगवान् महावीर के उच्चादर्शों तथा जैनो द्वारा प्रत्येक क्षेत्र मे भारतीय सस्कृति को संजोने की जानकारी एक छोटी से आसान पुस्तक के द्वारा साधारण भारतीय तक पहुचाई जाये।

ला० डिप्टीमल जी के आदेशानुसार बडे परिश्रम से यह पुस्तक तैयार की गई है और निर्भयता से अपने अपद्व विचार इसमें दिये गये पाठक महोदय इसे पुस्तक का अवलोकन करके जान पायेंगे

कि जैनो का अतीत भारतीय सस्कृति के लिये कितना गौरवमय है और भगवान् महावीर का सदेश संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये तीनों समयो मे कितना वास्तविक, सुखमय और शान्तिपूर्ण है।

इस पुस्तक का भली प्रकार सिहावलोकन राजकीय पुरस्कार विजेता पं० हीरा लाल जी शास्त्री, पं० सुमेर चन्द जी जैन शास्त्री, श्री धनदेव कुमार जी प्रभाकर और मेरी सुपुत्री श्रीमती डा० अमरा जैन, एम०ए०पी०एच०डी० ने किया है। मै इन सब महानुभावों का आभारी हू। डा० श्री मुनीद्र कुमार जैन एम०ए०एलएल०बी० जे०डी० के सुझावो के लिये मै हृदय से कृतज्ञ हू।

खेद है कि यह पुस्तक एक वर्ष से अधिक प्रेस मे रही और समय पर न छप सकी। फिर भी इसकी उपयोगिता सर्व सिद्ध है, ऐसा मेरा विश्वास है।

पाठको से निवेदन है कि इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् अपनी अमूल्य सम्मति निम्न पते पर भेजे :

भवदीय

8-ई, सदर थाना रोड, दिल्ली-110006.
अगस्त, 1977

शादी लाल जैन
प्रिंसिपल

इस प्रकाशन के प्रेरक

ला० डिप्टीमल जी जैन

का संक्षिप्त परिचय



अहिंसा, सच्चाई, ईमानदारी, कर्मठता, समाज सेवा तथा देश सेवा की जीवंत मूर्ति ला० डिप्टी मल जैन का जन्म 16 नवम्बर सन् 1894 को दिल्ली में हुआ। सन् 1917 में सेंट् स्टीफन्स कालेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् आपने लाहौर में एल. एल. बी. में प्रवेश प्राप्त किया। सन् 1919 में अमृतसर में जलियांवाला बाग हत्या काण्ड से प्रभावित होकर आपने एल.एल.बी. परीक्षा का बहिष्कार किया। मेधावी छात्र होने के कारण आप प्राइमरी से बी. ए. तक निरंतर सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे।

बाल्यकाल से ही समाज सेवा की ओर आपकी विशेष रुचि रही है। सन् 1913 में, अपने विद्यार्थी काल में ही, आपने हिंदू युवक सभा का संगठन किया जिसके अंतर्गत एक पुस्तकालय व कमजोर बच्चों की निःशुल्क शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। तदुपरांत सेठ केदारनाथ गोयनका के सहयोग से दिल्ली में सर्वप्रथम सार्वजनिक मारवाड़ी पुस्तकालय और वाचनालय की नींव डाली। सन् 1917 में पहली

बार एक स्वयसेवक सस्था 'इद्रप्रस्थ सेवक मडली' के नाम से स्थापित की। उपर्युक्त समस्त समाज-सेवी सस्थाओं के आप मुख्य सचिव के रूप मे कार्य करते रहे।

देश-सेवा आपके जीवन का व्रत है। सन् 1920 से ही आपने देश सेवा कार्यो मे दिल खोलकर भाग लेना आरम्भ कर दिया और 1932 के आन्दोलन में विशेष भाग लिया और जेल यात्रा की। सन् 1942 के भारत छोडो स्वतत्रता आदोलन में आप कूद पड़े। परिणाम-स्वरूप सन् 1973 मे स्वतत्रता सेनानी के रूप मे भारत सरकार ने आपको 'ताम्र पत्र' भेट किया।

काग्रेस सगठन कार्यो में आपकी योग्यता निखर कर जनता के सामने आई। वर्षो तक आप दरीबा काग्रेस कमेटी के प्रधान रहे और दिल्ली जिला काग्रेस कमेटी के भी प्रधान रहे। अनेको बार आप दिल्ली प्रदेश काग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। दिल्ली प्रदेश पोलिटिकल काग्रेस दल की स्वागत समिति के आप अध्यक्ष थे। आप की कर्त्तव्यनिष्ठा, सूझबूझ और संगठन प्रतिभा से प्रेरित होकर काग्रेस दल ने दिल्ली असेम्बली, नगर पालिका तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनावों का बहुत बडा बोझा आपके कधो पर डाला और आपने बडी योग्यता और सफलता पूर्वक इस गुरुतर कार्य को निभाया।

फलत: आपकी सर्वप्रियता काग्रेस क्षेत्रो में इस दर्जा बढी कि आप सन् 1931-34, 1937-39, 1945-51 मे दिल्ली नगर पालिका तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित होते रहे और 1948-49 मे इसके वाईस प्रेजीडेट भी चुने गये। कई बार आपको नगर-पालिका की शिक्षा उपसमिति का प्रधान भी चुना गया। इस पद पर आसीन होकर आपने दिल्ली में प्रथम बार शारीरिक तथा सामाजिक शिक्षा प्रारम्भ की। जब सन् 1947 में दिल्ली मे साम्प्रदायिक दगे हुए

तो आपको आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया और पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के पुनर्स्थापन के लिए गठित की गई समिति का सदस्य भी चुना गया।

वास्तविकता यह है कि ला० डिप्टीमल जी जैन का प्रत्येक श्वास जन सेवा में गुजरा है। आप निम्न संस्थाओं के प्रधान रहे :

1. जैन शिक्षा बोर्ड 2. कार्यकारिणी प्राचीन श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन पंचायत 3. जैन को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड 4 पुस्तक चयन समिति, दिल्ली प्रदेश 5. जैन हायर सैकेंडरी स्कूल, दरियागंज।

उपप्रधान :

1. दिल्ली लायब्रेरी एसोसियेशन 2. दिल्ली युनाइटिड चैम्बर आफ ट्रेड एसोसियेशन 3. दिल्ली प्रदेश भगवान् महावीर 2500 वीं निर्वाण महोत्सव समिति 4. दिल्ली प्राकृतिक चिकित्सा परिषद्।

आप दिल्ली प्रशासन द्वारा नियुक्त कई कमेटियों के भी प्रमुख सदस्य रहे। इस समय आप निम्न संस्थाओं के प्रधान हैं :—

1 जैन सभा धर्मार्थ ट्रस्ट (रजि.) माडल टाउन,

2. जैन सभा, माडल टाउन,

3. दिल्ली अहिंसा शिक्षक संघ (संस्थापक व संरक्षक)

व्यवसाय आपके जीवन-निर्वाह का आधार रहा है। वस्तुतः आपने अपने भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भी सत्य, न्याय और नीति का कीर्तिमान स्थापित किया है। आप दिल्ली बिल्डिंग मैटीरियल मर्चेन्ट एसोसियेशन के सर्वप्रथम प्रधान चुने गये।

अणुव्रत शास्ता आचार्य श्री तुलसी जी, मुनि सुशील कुमार जी, मुनि राकेश कुमार जी आदि महान् सन्तों के निकट सम्पर्क में आकर आपने जैन धर्म व समाज की विशेष सेवा की।

आपने सन् 1965-66 में अहिंसा शिक्षक संघ दिल्ली की नींव डाली। डा० डी० एस० कोठारी भूतपूर्व चेयरमैन यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन इसके संरक्षक बने। शिक्षा क्षेत्र में इस नवोदित संस्था ने महत्वपूर्ण

कार्य किये। शिक्षा निदेशालय की सहायता से स्कूलो की पाठ्य पुस्तको से जिनमें अण्डा, मॉस मछली के प्रयोग का प्रचार था, वे सभी उल्लेख व स्थल हटा दिये गये। ला० डिप्टीमल जी जिस भी कार्य को अपने हाथ मे लेते थे सफलता उनके कदम चूमती थी। आपने अध्यापको के मानसिक स्तर को ऊचा करने के लिए अनेक गोष्ठियो और शिविरो का आयोजन भी किया।

आपका जीवन सयमी है। दो दशको से आपने अन्नाहार का त्याग कर रखा है। आपका प्रत्येक क्षण जन सेवा मे बीता है। आपका आदर्श जीवन युवा पीढी का उचित मार्ग-दर्शन करता है।

आप अदम्य उत्साही है, परन्तु भगवान् महावीर के 2500 वे निर्वाणाब्द महोत्सव में, जिसकी दिल्ली प्रदेश समिति के आप उप-प्रधान थे, अत्यधिक परिश्रम करने के कारण आप पक्षाघात का शिकार हुए। चलना फिरना अब आपके लिए कठिन हो गया है परन्तु आपके सद्विचार और मनोवल उन्नति पर है।

आपके पद चिन्हो पर चलने वाले, आज्ञाकारी, समाजसेवी तथा कुशल व्यवसायी सुपुत्र श्री आदीश्वर लाल जैन बी. काम. (आनर्स), एम. ए. (अर्थशास्त्र), डिप्लोमा इन इकानामिक एडमिनिस्ट्रेशन, आपके स्वप्नो को साकार करने में कृत्सकल्प है।

परम आदरणीय ला० डिप्टीमल जी जैन के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे दो दशको से प्राप्त है। इन्ही की विशेष प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है ताकि थोडे शब्दो मे जनसाधारण को यह बतलाया जा सके कि भारतीय सस्कृति के पोषण मे 'जैनों' की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। मैं इस शुभ कार्य की पूर्ति के लिये इनके मुख्य सहयोग का विशेष आभारी हूं।

शादी लाल जैन

प्रिंसिपल

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
1	श्रमण परम्परा	9
2	यति और व्रात्य—दो क्रांतिकारी	12
3	ऋषभ—मानवता के प्रथम शिक्षक	14
4	तीर्थंकर—संसार सागर का खिवैया	18
5 (क)	भगवान् महावीर—साधना काल	23
5 (ख)	भगवान् महावीर—अद्वितीय क्रांतिकारी महापुरुष	27
5 (ग]	भगवान् महावीर के वचनामृत	29
5 (घ)	भगवान् महावीर का कर्मवाद	37
5 (ङ)	भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित 'द्विविध धर्म'	40
6	मृत्यु कला	46
7	भगवान् महावीर—आध्यात्मिक सैनिक सेवा-दल	49
8 (क)	राज शक्ति का अहिंसा प्रचार में योगदान	64
8 (ख)	सम्राट् खारवेल	64
8 (ग)	जैन धर्म का विस्तार	68
9	जैन धर्म का प्रभाव क्षेत्र	75
10	जैन धर्म का विकास—कारण	79
11 (क)	जैन धर्म का ह्रास—कारण	82
11 (ख)	जैन धर्म—ह्रास की रोकथाम कैसे हो ?	89
12 (क)	जैनो की साहित्य सेवा	99

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
12 (ख)	जैन धर्म शास्त्र—दिगम्बर जैन समाज की मान्यता	102
13	जैनाचार्यों की साहित्य सेवा	104
14 (क)	जैन पुराण, जैन कथा साहित्य, जैन व्याकरण	112
14 (ख)	साहित्य सेवी जैनाचार्य	120
15 (क)	जैन कला और पुरातत्व	125
15 (ख)	जैन कला और पुरातत्व	135
15 (ग)	जैन कला और पुरातत्व	136
16	जैन चित्र कला	153

अध्याय

1

श्रमण परम्परा

श्रमण परम्परा का उदय कब हुआ यह कहना अति कठिन है ! किन्तु हमे जब से भारतीय सस्कृति एव इतिहास की झलक दिखाई देती है, तभी से श्रमण परम्परा का उल्लेख प्राप्त होता है ।

वैदिक साहित्य मे श्रमण परम्परा के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, इतना ही नही अनेक बातो में वैदिक सस्कृति श्रमण परम्परा से प्रभावित होती है । इस प्रसग मे भारतीय सस्कृति के निष्णात विद्वान् डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के विचार महत्वपूर्ण है :—

"इन पुराणो से हमारा तात्पर्य यह बतलाना है कि भारतीय सस्कृति में निवृत्तिधर्मी श्रमण परम्परा और प्रवृत्ति मार्गी गृहस्थ परम्परा दोनो बटी हुई रस्सियो की तरह एक साथ विद्यमान रही और दोनो मे बहुत कुछ आदान-प्रदान चलता रहा । श्रमण परम्परा के कारण ब्राह्मण धर्म ने वानप्रस्थ और सन्यास को प्रश्रय दिया ।"

ऋषि, मुनि – दो रत्न

भारतीय परम्परा ऋषियो-मुनियो की परम्परा है । ऋषि और मुनि दोनो ज्ञानी और आत्म-द्रष्टा माने जाते है । ससार के प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थ 'वेद' में ऋषि तथा मुनि दोनो का वर्णन है ।

'ऋषि' को मन्त्र-द्रष्टा की सज्ञा दी जाती है । वह जंगल में निवास करता है, हवन आदि से देवताओ को प्रसन्न करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है । ऋषि प्राय: पत्नी तथा बच्चो सहित बन में रहकर सध्योपासना करता है ।

'मुनि' आत्मज्ञता में बहुत आगे है। वह प्रायः अन्तर्मुखी है। शरीर एव वस्त्र का उसे ध्यान नही है। वह नगा भी रह सकता है। उसे बाहरी स्नान-मञ्जन की आवश्यकता महसूस नही होती। चू कि वह सदा आत्म-चिंतन मे लीन रहता है, मनन करता है अतएव वह मुनि है। मुनि पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है, पूर्ण अहिंसक है, पूर्ण अपरिग्रही है।

'वेद' मे 'वातरशना' मुनियो का वर्णन आता है।'केशी' मुनि को वातरशना मुनियो मे सर्वप्रथम माना गया है। केशी और केसरी एक ही अर्थ के द्योतक है। चौदहवे कुलकर (मनु) 'नाभि' के पुत्र 'ऋषभ' की महिमा वेदो ने बहुत गाई है। 'केशी, केसरी, केसरिया नाथ' ऋषभ भगवान् के गुणवाचक शब्द है। ऋषभ एक ऐसे अवतारी पुरुष हैं जिनका आदर वैदिक सस्कृति व श्रमण सस्कृति समान रूप से करती है।

आचार की दृष्टि से 'श्रमण' का दूसरा नाम 'मुनि' ही है। श्रमण आत्मविकास के लिए अत्यन्त परिश्रम करके एव जागरूक रह कर अन्तर्ज्योति को प्रज्वलित करता है। वह अपनी इच्छाओ का निरोध करके प्राणिमात्र का हित चाहता है।

सेवा, परोपकार और धर्म प्रचार मे वह जीवन का आनन्द अनुभव करता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह उसके आजन्म अभिन्न सखा है। 'मुनि' ऐसी श्रमण संस्कृति का एकमात्र प्रतीक है। श्रीमद्भागवत में वातरशना श्रमणो को आत्मविद्याविशारद, ऋषि, शान्त, सन्यासी और श्रमण कह कर ऊर्ध्वगमन द्वारा उनके ब्रह्मलोक में जाने की बात कही है।

बौद्ध धर्म में बताया कि "श्रमण चाहे भाषण कम करे किन्तु तदनुसार धर्म का आचरण करता हो, राग द्वेष से मुक्त हो। जो शान्त-

दान्त, नियम-तत्पर, ब्रह्मचारी और सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति अहिंसक हो। जो बाह्य प्रदर्शन मात्र के लिए श्रमणत्व स्वीकार न करता हो और जो समचर्या वाला हो।"

मेगास्थनीज कहता है कि श्रमण ब्राह्मणों और बौद्धों से भिन्न हैं। श्रमण शब्द के तीन अर्थ हैं—

श्रम—परिश्रम करके जो मुक्ति प्राप्त करे।
सम—सभी प्राणियों के प्रति समता रखे।
शम—इन्द्रिय जयी हो।

श्रमण साधुओ का सर्वत्र वर्णन मिलता है।

वैदिक और श्रमण सस्कृति के मेल से ही भारतीय संस्कृति उज्ज्वल हुई है। वस्तुत: दोनो एक-दूसरे की पूरक हैं। दोनों एक सिक्के के दो पहलू है। यदि वैदिक सस्कृति को मूल रूप मे शरीर की सज्ञा दें तो श्रमण संस्कृति को उसकी आत्मा कह सकते है। ऐसी समन्वयात्मक दृष्टि ही भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित कर सकती है।

——○——

अध्याय

2

यति और व्रात्य— दो क्रांतिकारी

ऋग्वेद में मुनियों के अतिरिक्त यतियो का उल्लेख भी बहुतायत से मिलता है। जैन आगमों (शास्त्रो) में 'यति' का वर्णन जगह-जगह पर आया है जो आज तक प्रचलित है। आरम्भ में ऋषि-मुनियो और यतियों के बीच तालमेल रहा और समाज में वे विशेष रूप से पूजे जाते रहे।

यति को काम-क्रोध रहित संयतचित्त व वीतराग कहा गया है। बाहरी क्रिया-काण्ड उन्हे पसन्द नही है।

अथर्ववेद के पन्द्रहवे अध्याय में 'व्रात्यो' का विशेष वर्णन आया है वे अपने समय की प्राकृत भाषा बोल सकते थे। 'व्रात्य' वैदिक विधि से 'अदीक्षित व सस्कारहीन' विशेषणो से उपयुक्त होते थे। वे ज्याहृद (प्रत्यचा रहित धनुष) धारण करते थे। मनुस्मृति में लिच्छवि, नाथ, मल्ल आदि क्षत्रिय जातियो को व्रात्यो मे गिना गया है।

यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो परिणाम यह निकलता है कि 'व्रात्य' भी श्रमण परम्परा के साधु व गृहस्थ थे। जैन धर्म के मुख्य पाँच नियमों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को व्रत कहा गया है। उन्हे ग्रहण करने वाले श्रावक 'देश विरती या अणुव्रती' और मुनि महाव्रती कहलाते हैं। जो श्रावक विधिवत् 'व्रत' ग्रहण नही करते, तथापि धर्म में श्रद्धा रखते हैं वे अविरत सम्यग्दृष्टि कहे जाते है। इसी प्रकार के व्रतधारी 'व्रात्य' कहे गये, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि वे हिंसा तथा यज्ञ-विधियों के नियम से त्यागी होते

है। इसी कारण से उपनिषदो में कही-कही व्रात्यो की अधिक प्रशसा की गई है। 'प्रश्नोपनिपद्' में कहा गया है—व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषि रत्ता विश्वस्य सत्पतिः। हिन्दी मे 'शकर भाष्य' में व्रात्य का अर्थ स्वभावत: एक शुद्ध 'इत्यभिप्राय' किया गया है। अत: सिद्ध हुआ कि 'यति और व्रात्य' अपने समय मे त्यागमूलक समाज का प्रतिनिधित्व करते थे। इस काल के त्याग-प्रधान प्रवृत्ति के सवाहक 'श्रमण संस्कृति' के उपासक ही हो सकते थे जो 'यति तथा व्रात्य' जैसे भिन्न भिन्न नामों से पुकारे गये।

श्रमण संस्कृति के मुनियों, यतियो, व्रात्यो की भारतीय समाज को यह अद्वितीय देन है कि उन्होने भाषाई और बाहरी सस्काराडम्बरों में पड़ने की अपेक्षा सीधी-सादी प्रचलित लोकभाषा में अहिसा के माध्यम से आत्म-गुणो का विकास करने का नारा लगाया। उन्होने सादगी, सच्चाई और मानसिक सफाई की छाप समाज में जन-जन के हृदय पर लगाई।

——०——

अध्याय

3

ऋषभ-मानवता के प्रथम शिक्षक

पुराणो का कथन है कि चैत्र वदी ९ को महाराज नाभि की गुणवती महारानी मरू देवी के गर्भ से एक अत्यन्त तेजस्वी, पराक्रमी तथा भाग्यशाली बालक का जन्म हुआ। कहते है कि इस होनहार बालक के दाहिने पैर मे वृषभ (बैल) का चिह्न था इसलिए उनका नाम वृषभदेव अथवा ऋषभदेव रखा गया।

युग बदल रहा था। लोगो की खाद्य समस्या कल्पवृक्षो से पूरी होती नजर नही आती थी। कल्प वृक्षो की संख्या तेजी से कम हो रही थी। लोगो की घबराहट बढी और बदलती हुई परिस्थिति का वे सामना न कर सके। उनकी दृष्टि युगपुरुष ऋषभदेव पर पड़ी।

ऋषभदेव ने उपस्थित समस्या का विश्लेषण किया। उन्होंने लोगो को अन्नोत्पादन के लिए 'कृषि' का उपदेश दिया और कहा जिस प्रकार एक अनार को चीरने से सैकड़ो रसयुक्त दाने प्राप्त होते है इसी प्रकार पृथ्वी में हल चला कर और बीज बोकर आप असख्य दाने प्राप्त करके अपनी भोजन समस्या को हल कर सकते हैं।' इस प्रकार ऋषभ 'अहिंसक संस्कृति' के प्रथम विधाता हुए जिन्होने शाकाहारी विश्व की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाना प्रकार के वृक्षो व औषधियो की उपयोगिता का ज्ञान कराया।

जीविकोपार्जन एवं सामाजिक जीवन गुजारने के लिए ऋषभ ने लोगों को 'असि' (अपनी रक्षा हेतु अस्त्र शस्त्र चलाने की विद्या) 'मसि (विद्योपार्जन) कृषि (खेती, पशु, पालन) वाणिज्य, नृत्य, गायन

तथा शिल्प आदि विद्याये सिखायीं। कृतज्ञतापूर्वक सभी लोगों ने ऋषभ को 'प्रजापति' की उपाधि से विभूषित किया।

ऋषभ ने 'विवाह' प्रथा का श्रीगणेश किया। उनके अनेक पुत्र पुत्रियाँ हुयी। उनके पुत्रो में 'भरत' और 'बाहुबलि' के नाम उल्लेखनीय है। भरत पहले चक्रवर्ती राजा हुए। बाहुबलि ने ससार त्याग कर अनुपम तपस्या की जिसे सुन कर रोमाँच हो आता है। अन्त में समस्त कर्मों को समाप्त करके आप मुक्ति को प्राप्त हुए। मैसूर राज्य (कर्णाटक) में श्रवणबेलगोल मे बाहुबली की ५७ फुट ऊंची पाषाण मूर्ति १० वी शताब्दी में चामुण्डराय सेनापति द्वारा निर्मित लाखों पर्यटको की श्रद्धाभक्ति का केन्द्र बनी हुई है और ससार में जैन वास्तुकला का एक आश्चर्यचकित आदर्श उपस्थित करती है।

ऋषभ महाराज की 'ब्राह्मी और सुन्दरी' दो गुणवती कन्याये हुयी। भारत की लिपियो की सिरमौर 'ब्राह्मी लिपि' की आविष्कर्त्री यही ऋषभ पुत्री ब्राह्मी ही है। भ० ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को अक्षर विद्या सिखाई जो उसके नाम से ब्राह्मी लिपि प्रसिद्ध हुई। सम्राट् अशोक ने उसका नाम अशोक लिपि रखा। गुजरात के नागर ब्राह्मणो ने उसका नाम नागरी रखा। आदर सूचक भाव प्रकट करने के लिए देव शब्द का नाम प्रयोग किया गया इसलिए देवनागरी नाम से यह लिपि प्रसिद्ध हुई। इसी लिपि ने भारत की अधिकांश लिपियां जैसे शारदा, कश्मीरी, गुरुमुखी, गुजराती, बगला, उड़ीसा, आसामी, महाजनी और मुण्डा प्रचलित हुयी।

ब्राह्मी लिपि का पहला शिलालेख राजस्थान के बडरी गाव से प्राप्त हुआ है जो भ० महावीर स्वामी के निर्वाण के ८४ वें वर्ष में लिखा गया है।

दूसरी पुत्री सुन्दरी को उन्होने अक विद्या सिखाई, यही से अरब देश वालो ने गिनती सीखी जो उसे हिन्दसा (हिन्द से याद आई) कहते है और उनसे ही रोम वालो ने सीखी ।

-सुन्दरी ने 'अकगणित' का अनुष्ठान किया । ऋषभदेव के अन्य पुत्रो ने अलकार, छद, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयो को उन्नत किया ।

समय बीतने पर महाराज ऋषभदेव ने अयोध्यापति की उपाधि से विभूषित हो कर सुख वैभव से भरपूर राज्य किया और आश्रित प्रजा को सुखी बनाकर 'कर्म-युग' की नीव डाली ।

ऋषभ महाराज को इन्द्रिय सुख-वैभव का जीवन अधिक ग्रसित नही कर सका । वह इन्द्रियगत सुख-वैभव की क्षणभगुरता और असारता को पहचानते थे । एक विशेष घटना ने उनकी जीवन-चर्या बदल दी, उन्होंने सुख-सम्पत्ति, पूर्ण राज्य वैभव तथा कुटुम्बी जनो को छोड़ वैराग्य का दामन पकड़ा और कठोर तपस्या करके केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति की और अतत: कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ होकर पार्थिव शरीर को त्याग दिया । ऋषभ ससार के आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप बन गये । उन्होंने कैलाश पर्वत से मुक्ति को प्राप्त कर शाश्वत सुख के अधिकारी शिव पद को प्राप्त किया ।

भ० ऋषभदेव ने माघ कृष्णा चतुर्दशी को निर्वाण पाया । वैष्णव धर्म में शिवरात्रि फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी को मनाई जाती है । यह एक माह का अन्तर उत्तर और दक्षिण के पंचागों के कारण है । दक्षिण में शुक्ल पक्ष प्रथम और कृष्ण पक्ष बाद मे माना जाता है । जबकि उत्तर भारत में कृष्ण पक्ष प्रथम और शुक्ल पक्ष महीने के अन्त में माना जाता है ।

भ० ऋषभदेव ने प्रयाग में जहाँ तपस्या की थी वह स्थान अक्षय-बट और उत्कृष्ट तपस्या के कारण प्रकृष्ट+याग अथवा प्रयाग नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

योगीश्वर ऋषभ ही शिव है जिन्हे सभी धर्म वालो ने अपना आदि पुरुष स्वीकार किया है।

ऐसे 'भगवान् ऋषभदेव' (आदिनाथ) को प्रत्येक भू-मानव शत-शत प्रणाम करे और उनके पद-चिह्नो पर चलकर स्व-पर कल्याणा-रूढ होकर सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करे तथा उनके समान कर्म-निर्जरा करते हुए मोक्ष पद प्राप्त करे।

"मानवता के जनक ऋषभ भगवान् की जय हो।"

——o——

अध्याय

4

तीर्थंकर–संसार सागर का खिवैया

अंधेरी रात थी। आकाश पर बिजली कडक रही थी। नदी में ऊँची ऊँची तरगे उठ रही थी। ऐसे समय में एक यात्री आया, उसने नदी के उस पार जाना था। उसे अवश्यमेव नदी पार उतरना था।

यात्री जोर से चिल्लाया, "है यहाँ कोई चतुर नाविक जो मुझे पार ले जाये ?" यात्री की आवाज सुनी अनसुनी हो गई। आकाश में बिजली जो चमकी तो उसे थोड़ी दूर पर दो-तीन नावें खडी दिखाई दी। यात्री उनके पास गया। बड़ी अनुनय विनय की परन्तु कोई नाविक अपनी नाव को और अपने आपको इस जोखिम में डालने के लिए तैयार न हुआ।

इतने मे एक दिव्य घटना हुई। सामने से एक विशाल-काय तथा देदीप्यमान ललाट वाला व्यक्ति आता दिखाई पड़ा। उस दिव्य पुरुष ने कहा, "यात्री, क्यो चिन्ता में डूबे हुए हो ? आओ, मेरी नाव में बैठो। हजार बिजली कड़के, नदी में तूफान आए परन्तु तुम्हारा बाल-बांका नही होगा।

यात्री प्रभावित हुआ और विश्वास करके उस दिव्य नाविक की नाव में बैठ गया। विकराल नदी-तरंगों और भीषण जल-जन्तुओं के मध्य में से नाविक अपने कला-कौशल से नाव को नदी के उस पार ले गया।

यात्री ने सुख की सांस ली और कहा, "मेरे रक्षक ! मेरे देवता कैसे आपका धन्यवाद करूं ? बदले में आपकी क्या सेवा-चाकरी करूं? कितनी राशि यात्रा-शुल्क में दूं ? "

दिव्य नाविक मुस्कराया और कहने लगा, भोले यात्री, दु:ख रूपी संसार सागर में पडे यात्रियो को मैं सदा से नदी पार कराता आ रहा हूं। मै बदले मे कोई शुल्क आदि नही लेता। 'आप सुरक्षापूर्वक पार हुए'—बस यही मेरा शुल्क है।''

ऐसे ही दिव्य खिवैया तीर्थंकर कहलाते है जो स्वय कर्मबंधन से मुक्त होकर अन्य संसारी जीवो को नि.स्वार्थ भाव से इस संसार से पार कराते हुए अपने समान आत्मद्रष्टा और कृतकृत्य बनाते है।

जैन परम्परा मे, इस अवसर्पिणी काल में, चौबीस तीर्थंकर हुए है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ भगवान् का जिक्र हम पहले कर आए है। इक्कीसवे तीर्थंकर श्री नमिनाथ, बाईसवे श्री अरिष्टनेमि नाथ, तेईसवे श्री पार्श्व नाथ और चौबीसवे श्री महावीर स्वामी हुए। भगवान् ऋषभ का वर्णन भागवत् पुराण तथा वेदो मे आता है। शेष तेईस तीर्थंकरो का हाल जैन पुराणो तथा आगमो मे फुटकर रूप में आता है। इतिहास २१ वें तथा २२वे तीर्थंकर के सम्बन्ध में साधारण सी रोशनी डालता है, २३वे तीर्थंकर श्री पार्श्व नाथ जी महाराज को तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिया गया है। भगवान् महावीर का तो विशाल साहित्य हमें प्राप्त है ही, यद्यपि इसको भी कई विद्वान् लोग बचाखुचा साहित्य ही मानते है।

अब हम यह जानना चाहेगे कि २१वे तीर्थंकर से लेकर २४वें तक भारत को तथा विश्व को क्या निधि प्राप्त हुई ?

इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नमिनाथ—नमि मिथिला के राजा थे। हिन्दू पुराणो में उन्हे 'राजा जनक का पूर्वज' माना गया है। नमि ने प्रव्रज्या (साधु वृत्ति) ग्रहण की। नमि की अनासक्त वृत्ति मिथिला राजवंश मे 'जनक' तक पाई जाती है। इसी आध्यात्मिक परम्परा के कारण उनका वश तथा समस्त प्रदेश ही 'विदेह' (देह से निर्मोह, जीवन-मुक्त) कहलाया और उनकी अहिंसात्मक प्रवृति के कारण ही उनका

धनुष प्रत्यञ्चाहीन रूप में उनके क्षत्रियत्व का प्रतीक मात्र सुरक्षित रहा। सम्भवत. यही वह जीर्ण धनुष था जिसका श्री रामचन्द्र जी ने चिल्ला चढाया और उसे तोड डाला। व्रात्यो के ज्याहृद (प्रत्यञ्चाहीन धनुष) का यही ठीक मेल बैठता है जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठो मे किया जा चुका है।

२. बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) :—

शौरीपुर (आगरा उ० प्र०) के यादव वशी राजा अधक वृष्णी के समुद्रविजय ज्येष्ठ पुत्र और वसुदेव सबसे छोटे पुत्र हुए। समुद्र विजय नेमिनाथ के पिता थे और वसुदेव के पुत्र हुए 'वासुदेव कृष्ण'। राजा जरासध के आतंक से यादव शौरीपुर को छोडकर द्वारिका में जा बसे।

राजकुमार नेमिनाथ का विवाह सम्बन्ध गिरनार (जूनागढ) के राजा उग्रसेन की कन्या राजुलमती (राजीमती) से निश्चित हुआ। बारात जब वधू के घर पहुँची तो नेमिनाथ ने अतिथियो के हेतु मारे जाने वाले बदी पशुओ की दिल हिला देने वाली चीत्कार सुनी। नेमिनाथ का कोमल हृदय इस हिसा को सहन न कर सका। उन्होने करुणानाद से प्रेरित होकर उन बदी पशुओ को मुक्त कराया और ससार को असार समझते हुए, विवाह-क्रम को अस्वीकार करते हुए गिरनार पर्वत की ओर प्रस्थान किया। वही उन्होने घोर तप किया और कैवल्य' प्राप्त कर प्राचीन 'श्रमण परम्परा' को पुष्ट किया।

अहिसा को धार्मिक वृत्ति मानकर भगवान् नेमिनाथ ने इसे सैद्धातिक रूप दिया। इनका 'पशुरक्षण आदोलन' जूनागढ के निकट से आरम्भ होकर समूचे सौराष्ट्र और भारत में फैल गया। इस त्यागमूलक आदोलन ने लोगों के नेत्र खोल दिये। आज भी सौराष्ट्र मे शेष भारत की अपेक्षा बहुत कम हिंसा होती है। यह भगवान् नेमिनाथ के इस पशुरक्षण आंदोलन का ही फल है।

भ० नेमिनाथ को ही अगिरस ऋषि के नाम से वैष्णव धर्म में कहा गया है। मथुरा कर्जन म्युजियम में भ० नेमिनाथ की जो अनुपम मूर्तिया प्राप्त हुयी उनमें बीच मे भ० नेमिनाथ जिनके नीचे शख का चिह्न दाये तरफ बलदेव जिनके हल का और बांये तरफ श्रीकृष्ण नारायण की मूर्ति है जिनके नीचे चक्र का चिह्न है। भ० नेमिनाथ ने आध्यात्म विद्या का उपदेश दिया।

सौराष्ट्र मे युग-युगान्तर की एकत्रित अहिंसा प्रवृत्ति ने उन्नीसवीं-बीसवी शताब्दी मे महात्मा गांधी को पाया जिसने अहिंसा-चक्र से अग्रेज रूपी दैत्यो का दमन करके भारत को स्वतन्त्र कराया।

महात्मा गाधी की अहिंसा-शक्ति का श्रेय उनके सौराष्ट्री पूर्वज भगवान् नेमिनाथ को जायेगा।

३० तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ का जन्म बनारस के राजा अश्वसेन और उनकी रानी वामा देवी (वर्मला देवी) से हुआ। बचपन से ही उन्होने हिसामूलक अज्ञान तप का विरोध किया। गंगातट पर 'कमठ' नाम का योगी वडे लक्कड़ो की धूनी रमाये और अंग-भभूत लगाये जनता के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। उन्होने कमठ तापस को ललकारा और कहा कि तुम्हारा तप मिथ्या है जिसमें नाग-नागिन का जोडा जल रहा है। जब पार्श्वनाथ ने जलती लकडियो में से नाग-नागिन को जलते हुए दिखाया तो कमठ का अभिमान चूर हुआ।

पार्श्व ने जब साधुवृत्ति स्वीकार की और कर्मचूर तप किया तो देवयोनि मे जन्मा हुआ कमठ का वह जीव पुराने वैर-भाव का स्मरण करके अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए मुनि पार्श्वनाथ को बहुत दु:ख देने लगा। उस समय नाग और नागिन ने, जो मरकर धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी हुए, पार्श्व मुनि पर आए उपसर्गों का निवारण किया।

श्री पार्श्वनाथ का धर्म सर्वथा व्यवहार्य था। हिसा, असत्य, स्तेग और परिग्रह का त्याग करना'—यह चातुर्याम सवरवाद' उनका धर्म था। इस धर्म का उन्होने भारत भर मे प्रचार किया। प्राचीन भारत में अहिंसा को सुव्यवस्थित रूप देने का यह सर्वप्रथम उदाहरण है।

प्राचीन भारत में अरण्य में रहने वाले ऋषि-मुनियो के आचरण में जो अहिसा थी, उसे व्यवहार मे विशेष स्थान न था। तीन नियमो के सहयोग से अहिसा व्यवहारिक बनी, सामाजिक बनी। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगली जातियो तक को अहिसक बनाया। आपने ७० वर्ष तक अहिसा का प्रचार किया और १०० वर्ष की आयु में सम्मेद शिखर पर जाकर ७७७ ई० पू० निर्वाण प्राप्त किया। आपकी पुण्य चिरस्मृति में कृतज्ञ राष्ट्र ने सम्मेद शिखर का नाम 'पारस नाथ हिल' रख दिया है। भगवान् महावीर के माता-पिता भी पार्श्वानुयायी थे।

भगवान् पार्श्वनाथ के 'चातुर्याम' का उल्लेख निर्ग्रथों के सम्बन्ध मे बौद्ध पालिग्रंथो मे मिलता है और जैन आगमो मे भी बौद्ध ग्र थ अग: निकाय चतुक्कनिपात (वग्ग ५) और उनकी अट्ठकथा में उल्लेख है कि गौतम बुद्ध का चाचा 'बप्प शाक्य, निर्ग्रंथ श्रावक था। पार्श्वापत्यो तथा निर्ग्रंथ श्रावको के और भी अनेक उदाहरण मिलते है जिनसे निर्ग्रंथ धर्म' की सत्ता भगवान् बुद्ध से पूर्व भली-भाँति सिद्ध हो जाती है।

४. चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर.

विस्तार के लिए कृपया इसी पुस्तक का अगला अध्याय देखिए।

——०——

अध्याय 5

भगवान् महावीर
साधना काल

(सम्यक् ज्ञान-दर्शन-तप-आचार को सजीव मूर्ति एवं प्राणिमात्र के हितैषी)

भारत के प्राचीन इतिहास में ईसवी पूर्व सन् ५९९ की सुखद घटना है जबकि चैत्र शुक्ला त्र्योदशी की मध्यरात्रि की बेला थी। विदेहराज (बिहार) मे कुण्डपुर नामक नगर था। उसके उत्तरी भाग में क्षत्रिय कुण्ड ग्राम स्थित था। ज्ञातृवशीय महाराज सिद्धार्थ की रानी त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि से एक अपूर्व बालक ने जन्म लिया। ऋतुराज वसत अपने यौवन की अंगड़ाई ले रहा था। राज्य मे धन-धान्य, सुख-ऐश्वर्य में दिनो-दिन वृद्धि होने लगी थी। अतः नव-जात शिशु का नाम-संस्कार वर्द्ध-मान से किया गया।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। वर्द्धमान, अपने व्यवहार में अत्यंत बुद्धिमान विनयी, सयमी, ज्ञान-वान, धीर, वीर और साहसी सिद्ध हुए। उनके माता पिता भगवान् पार्श्वनाथ के उच्च सिद्धान्तों में आस्था रखते थे। अतः उनका पालन पोषण अहिसा, दया, करुणा और संयमशीलता के वातावरण में हुआ। समस्त राजसी सुख-वैभव उपलब्ध होने पर भी वर्द्धमान अलिप्त थे, अनासक्त थे, सात्विक थे। परिवार का मोहपाश उन्हें बाँध न सका। अपने माता-पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् अपने बड़े भाई नदिवर्द्धन की भावनाओं का आदर करते हुए केवल दो वर्ष के लिये मुनिव्रत ग्रहण न करने का संकल्प ले लिया

और दान, ध्यान व सेवा में रत रहकर गृहस्थ योगी की भाँति समय बिताया।

तीस वर्ष की भरपूर जवानी मे, सबकी सहमति से, वैराग्य-मार्ग अपनाते हुए गृह-त्याग किया।

।। महावीर की कठोर साधना ।।

बारह वर्ष, पांच मास और पन्द्रह दिन तक कठोरतम साधना की भट्टी में डाल दिया अपने आपको वर्द्धमान महावीर ने। तप की इस दीर्घ-कालीन अवधि में कोई ३४९ दिन इस साधक ने आहार किया होगा। दो दिन की अवधि से लेकर छः मास की अवधि पर्यन्त इन्होंने अनेक निराहार व्रत रखे।

वह पूर्ण असग्रही थे। वह क्षमाशूर थे। परन्तु अनेकों उपसर्ग आने पर भी वह अडोल रहे।

वह प्रहर-प्रहर किसी लक्ष्य पर एकाग्र हो ध्यान करते। लोग उनकी निंदा करते, परन्तु वह चुप रहते। कई व्यक्ति रोष में आकर उन्हे पीड़ित करते, महावीर समभाव से इन सब उपसर्गो को सहते।

महावीर ने अनासक्ति के लिए शरीर की परिचर्या को भी त्याग रखा था। संग-त्याग की दृष्टि से पात्र में भोजन नही करते और न वस्त्र ही पहनते।

उनका दृष्टि सयम लाजवाब था। वह चलते-चलते इधर-उधर नहीं देखते, पीछे नही देखते, बुलाने पर भी नही बोलते, केवल मार्ग को देखते हुए चलते थे।

वह प्रकृति विजेता थे। सख्त सर्दी हो या गर्मी वह नंगे शरीर घूमते। वह अप्रतिवद्ध बिहारी थे, परिव्राजक थे। बीच-बीच मे वह

शिल्प-शाला, झोंपड़ी, सूना घर, श्मशान, वृक्ष मूल आदि स्थानों में ठहरते। वह साधना काल में समाहित हो गये। अपने आप में समा गये वह दिन रात यतमान रहते। उनका अन्त:करण निरंतर क्रियाशील एवं आत्मान्वेषी हो गया।

महावीर ने पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु, वनस्पति और चर-जीवों का अस्तित्व जाना। उन्हें सजीव मान कर उनकी हिंसा से विलग हो गये।

वह अप्रमत्त बन गये, दोषकारक प्रवृत्तियों से हटकर सतत् जागरूक बन गये।

ध्यान के लिये समाधि, यतना और जागरूकता सहज अपेक्षित हैं। महावीर ने नीद पर भी विजय पा ली। वह दिन रात का अधिक भाग खड़े रहकर ध्यान में बिताते। विश्राम के लिए थोड़ा समय लेटते तब भी नीद नही लेते थे। जब नीद सताने लगती तो फिर खड़े होकर ध्यान में लग जाते। कभी कभी तो सर्दी की रातों में घडियो तक बाहिर रहकर नीद टालने के लिये ध्यान मग्न हो जाते।

महावीर ने पूरे १२½ वर्ष के साधना काल में बहुत ही कम नीद ली। शेष सारा समय उनका ध्यान और जागरण में बीता।

महावीर तितिक्षा की परीक्षा-भूमि थे। दृष्टिविष फेकने वाला विकराल 'चण्डकोशिक सर्प' भी उनका कुछ न बिगाड़ सका, न उन्होने रोष किया और न ही वह विचलित हुए। वह समभाव में कायम रहे। अन्य वनैले जीव जन्तुओं के उपसर्ग तो उनपर सारे साधना-काल में होते रहे।

वह अधिकतर मौन रहते और जनता का कोप-भाजन बनते। वह कभी सक्षेप में उत्तर देते भी तो इतना कहते "मै भिक्षु हूं।"

महावीर एक अपूर्व साधक थे। वह कष्टो को निमंत्रित करते।थे

वह कष्टो को विशुद्धि के लिये वरदान मानते थे और उन्हे धैर्य से झेलते थे। अधीर को कष्ट सहना पड़ता है, परन्तु धीर कष्ट को सहर्ष सहते हैं। जो जान बूझकर कष्टो को न्यौता दे, उसे उनके आने पर अरति (दु:ख) और न आने पर रति (प्रसन्नता) नही हो सकती। रति और अरति—ये दोनो—साधना की बाधाएँ है। महावीर इन दोनों को पचा लेते थे। वह मध्यस्थ थे।

देवो ने भी उनके समक्ष घोर कष्ट उपस्थित किये, उन्हे लक्ष्य से विचलित करने के लिए कोई कसर नही छोड़ी। उन्होने गन्ध, शब्द स्पर्श सम्बन्धी अनेको कष्ट सहे। महावीर ने इन समस्त कष्टो को 'समभाव' से सहन किया। साधना सफल होने को थी।

ग्रीष्म ऋतु का वैशाख महीना था। शुक्ल दशमी का दिन था। पिछले पहर का समय, विजय मुहूर्त्त और उत्तरा फाल्गुनी का योग था। जंभिय ग्राम नगर के बाहर ऋजु बालिका नदी के उत्तरी तट पर, 'श्यामाक गाथापति' की कृषि भूमि मे, व्यावर्त नामक चैत्य के निकट शाल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन मे बैठे हुए, ईशान कोण की ओर मुंह करके सूर्य का आताप ले रहे थे। दो दिन का निर्जल उपवास था। वह 'शुक्ल ध्यान में लीन थे। बारहवी भूमिका (गुणस्थान) में पहुचते ही उनके मोह का बन्धन पूर्णतः टूट गया। वह वीतराग बन गये। तेरहवी भूमिका का प्रवेश द्वार खुला। वही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के बन्धन भी पूर्णत: टूट गये। वह अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी, अनन्त आनन्दमय तथा अनन्त वीर्ययुक्त बन गये।

महावीर "केवली भगवान्" बन गये।

---o---

अध्याय

5

भगवान् महावीर— अद्वितीय क्रांतिकारी महापुरुष

भगवान् महावीर की क्रांति अहिंसामूलक थी। अतः वह सर्वतोमुखी कल्याणकारी थी। आध्यात्मिकता, दर्शन-शास्त्र, समाज व्यवस्था और भाषा के क्षेत्र मे उनकी देन बहुमूल्य है।

उन्होने तत्कालीन तापसो की तपस्या के बाह्यरूप के बदले बाह्याभ्यंतर रूप प्रदान किया। तप के स्वरूप को व्यापकता प्रदान की।

पारस्परिक खण्डन मण्डन में निरत दार्शनिको को 'अनेकान्तवाद' का महामत्र दिया।

सद्गुणो की अवहेलना करने वाले जन्मगत 'जातिवाद' पर कठोर प्रहार कर गुण-कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था का प्रतिपादन किया। मनुष्य मनुष्य के बीच समानता कायम की और भेद भाव की दीवारो को गिरा दिया।

किसी समय स्त्रियो को भोग की सामग्री माना जाता था। उनका यथोचित सम्मान न था। भगवान् महावीर ने उन्हे समानता का दर्जा प्रदान किया।

स्त्री को दीक्षित होने की अनुमति प्रदान कर उनके साध्वी संघ कायम किये।

यज्ञो में होने वाली पशु-हिसा को बन्द कराया और कहा कि 'आध्यात्मिक यज्ञ करो और उनमें अपनी इच्छाओ की बलि दो।'

जन-जन की प्रचलित भाषा लोकभाषा को अपने उपदेश का माध्यम बनाकर आत्मदर्शन रूपी सन्मार्ग का द्वार बिना भेदभाव के

सभी के लिए खोल दिया। इस प्रकार उच्च भाषाभिमान को समाप्त किया।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यह चार तीर्थ कायम किये, इनको 'सघ का नाम दिया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने भारतीय समाज के समग्र माप-दण्ड बदल दिये और सम्पूर्ण जीवन दृष्टि में एक दिव्य और भव्य नूतनता उत्पन्न कर दी।

धर्म और समाज की जो बुराइयाँ विकृत कर रही थी उन्हें समूल उखाड फेंका।

साम्प्रदायिकता, विषमता अज्ञानता को दूर कर भगवान् महावीर ने भारतीय समाज को स्वस्थ एव उदार दृष्टिकोण प्रदान किया।

राग और द्वेष पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाले भगवान् महावीर ५२७ ई० पू० कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पावापुर मे निर्वाण पद को प्राप्त होकर 'सिद्ध' बन गये।

——o——

अध्याय

5 भगवान् महावीर के वचनामृत

भगवान् महावीर का उपदेश समस्त विश्व के लिये हितकारी और शाँतिदायक है। यह त्रिकाल में सत्य है।

महावीर कहते है—गौतम ! जो जानता है, वही बधनो को तोड़ता है। जीव का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति या मुक्ति-लाभ है। 'सच्ची श्रद्धा 'सच्चा ज्ञान' और 'सच्चा आचरण' यह त्रिवेणी ही मोक्ष-मार्ग का साधन है।''

सद्ज्ञान के बिना कर्म-काण्ड, तप, जप, काय-क्लेश, देहदमन निरर्थक है, हानिकारक है। क्रियाहीन ज्ञान से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एक व्यक्ति सड़क पर बैठा था। वह टाँगो से विहीन था परन्तु उसके नेत्रो में तेज था। वह दूर तक वस्तुओ को देख सकता था। उसे मालूम था कि जिस सडक के किनारे वह बैठा है वह उसे गतव्य स्थान की ओर ले जायेगी। उसके मन मे उल्लास था, विश्वास था, साहस था निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने का। फिर भी उसे एक लाचारी थी क्योंकि वह टांगो से हीन था। वह किसी उपयुक्त आदमी की प्रतीक्षा कर रहा था।

सहसा उधेडबुन में उसकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी जो सावधानी से धीरे धीरे आगे बढ़ रहा था। उसे ठीक मार्ग ढूंढ निकालने की कठिनाई पड़ रही थी। उसका पाँव कभी खाई में पड़ जाता तो कभी

लड़खडा जाता । उसमें त्रुटि यह थी कि वह नेत्रहीन था, तो भी अपनी लाठी के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा था ।

लंगडे आदमी को उस अंधे व्यक्ति से वार्तालाप करके अत्यन्त प्रसन्नता हुई क्योंकि दोनों का लक्ष्य एक था और दोनो एक दूसरे के पूरक थे । दोनों मे एक न एक मूल त्रुटि थी । तय पाया कि टांग-विहीन व्यक्ति अंधे की पीठ पर सवार हो जाये और अंधा अपने नेत्रो वाले साथी के निर्देशन पर मार्ग पर आगे बढे । अंत में वे दोनों सुविधापूर्वक अपने इच्छित स्थान पर पहुँच कर आनदविभोर हो गये ।

इसी प्रकार सम्यक्दर्शन (श्रद्धान) और सम्यक् ज्ञान को जब सम्यक् चारित्र (आचरण) का सम्बल मिलता है तो इस त्रिपुटी (त्रिरत्न) से जीवन लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

झगडे का मूल "आग्रह" है । झगडे को मिटाना बुद्धिमत्ता में शामिल है । झगडे को मिटाने के लिए दोनों पक्षो की बात सुननी पड़ेगी । दोनो पक्षो में आँशिक सच्चाई हो सकती है ।

एक पुरानी कथा है—कुछ अंधे एक हाथी के निकट गए यह जानने के लिए कि हाथी कैसा होता है ? जिसने सूंड को पकड़ा वह चिल्लाया, "हाथी साप जैसा है ।" जिस अधे व्यक्ति के हाथ में कान आया उसने कहा कि हाथी पखे जैसा होता है । तीसरे ने पूछ पर हाथ फेरते हुए कहा अहो ! हाथी तो रस्से के समान है । जिस अन्धे का हाथ हाथी दाँत पर पड़ा उसने हाथी को डण्डे की उपमा दी । जिस अंधे का हाथ हाथी की टाग पर पड़ा उसने झुंझलाकर कहा अरे यह हाथी है या वृक्ष ? जो अंधा हाथी के पेट को टटोल रहा था उससे यह कहते

बन पड़ा, "भाइयो तुम सब गलत कहते हो वह तो सचमुच चट्टान की नाई है।"

यदि कोई नेत्रो वाला व्यक्ति उपर्युक्त नेत्र-हीनों की वार्ता सुन रहा हो तो वह उनकी मूर्खता एव अज्ञानता पर अवश्य हंसेगा। परन्तु वह इस तथ्य से इनकार नही करेगा कि प्रत्येक अधा "आंशिक सत्य" कह रहा है। पूर्ण सत्य अथवा हाथी का पूर्ण स्वरूप तो उन की बात को मिला कर होगा।

अतः परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले अपने दृष्टिकोणों को प्रमाणित रूप से स्वीकार करना "अनेकांतवाद है। अनेकान्त सिद्धांत को व्यक्त करने वाली "सापेक्ष भाषा पद्धति" ही स्याद्वाद है। 'स्यात्' शब्द का अर्थ है 'कथंचित्' या "किसी अपेक्षा से"। जो लोग स्यात् का अर्थ 'शायद' करते है, यह उनकी भूल है।

श्रोत्र (कान), चक्षु, घ्राण, (नासिका), रसना और स्पर्शन यह पाँच इन्द्रियाँ हैं।

5 'शब्द' श्रोत्रेंद्रिय का विषय है।
4 'रूप' चक्षु इन्द्रय का विषय है।
3 'गंध' घ्राणेन्द्रिय का विषय है।
2 'रस' रसना इन्द्रिय का विषय है।
1 'स्पर्श' स्पर्शेन्द्रिय का विषय है।

'मन' इन्द्रिय नही है। इंद्रियों का क्षेत्र सीमित है। मन के लिए कोई क्षेत्र की मर्यादा सीमित नही है, वह क्षण भर में स्वर्ग नरक तथा अखिल विश्व का चक्कर काट लेता है।

भगवान् महावीर ने कहा—"हे गौतम। मन जड़ भी है और चेतन भी। द्रव्य मन बिजली का बल्ब है और भाव मन उसके अदर प्रवेश करने वाली विद्युत है।

शरीर का राजा और आत्मा का मत्री होने के कारण मन कभी कभी आत्मा को मोह में फसा लेता है और इधर उधर भटकाता फिरता है। यदि वही मन वशीभूत हो जाता है तो एकाग्रता-लाभ मे सहायक बनता है तथा मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान का कारण बन जाता है।

हे महामुने। मन एक दुर्जय शत्रु है। क्रोध, मान, माया, लोभ में चार कषाय तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ये पाचो इद्रियाँ मिलकर शत्रु बनते है इन्हे ठीक रूप से जीतना चाहिए और सच्चा आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

हे साधक ! मन बहुत ही साहसिक, रौद्र और दुष्ट अश्व है जो चारो और दौड़ता फिरता है। इस अश्व को धर्म-शिक्षा द्वारा अच्छी तरह काबू किया जा सकता है।

प्राचीन तत्वचिंतकों ने 'लेश्या' विषय पर बड़ा सुदर विवेचन किया है जो आधुनिक मानस शास्त्रियो के लिए बड़ा रुचिकर और बोध-प्रद है।

लेश्या विचार मे यह देखा जाता है कि :—

मानस वृत्तियों का कैसा 'वर्ण' होता है ?
मनोविचारो को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है ?
मनोविचारो का उद्गम स्थान क्या है ?
उनमें 'वर्ण' आता कहाँ से है ? इत्यादि
मानसिक चचल लहरिया 'पुद्गलों' से

सम्मिश्रित होती हैं। पुद्गल मूर्त है। वैचारिक समूह का द्रव्य रूप पुद्गलमय होता है। जैसे विचार, वैसा वर्ण। और जैसे जैसे विचार वैसे वैसे पुद्गल का आकर्षण।

साधारणतया लेश्या का अर्थ मनोवृत्ति, विचार या तरंग हो सकता है किन्तु धर्माचार्यों ने 'कर्मश्लेष' के कारणभूत 'शुभाशुभ परिणामो' को ही लेश्या कहा है जिसे निम्न उदाहरण से छः भागों में विभक्त किया गया है।

एक ने कहा, "भई देखो, यह सामने एक विशाल जामुन का पेड़ है। आओ इसे काटकर धराशायी कर दे और मनचाहे फल खाए"।

दूसरा बोला, "सारा वृक्ष काटने से क्या लाभ ? केवल इसकी मोटी-मोटी फलदार शाखाएं ही काट लो।"

तीसरे ने ज़ोर से कहा, "भाई समझदारी से काम लो। जिन टहनियो तक हाथ पहुँचता है केवल उन्हे ही काटो।

चौथे व्यक्ति ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "भाइयो ! केवल फलो के गुच्छे ही तोड़ लो, टहनियो को हानि क्यों पहुँचाते हो ?"

पाँचवे ने अधिक सतर्क होकर कहा, "हमें तो चाहिए 'पके जामुन' वही क्यों न तोड़े ?"

छठे ने विचारपूर्वक सरल और शुद्ध मन से मार्गदर्शन करते हुए कहा, "सब लोग जरा बुद्धि से काम ले। आप सब लोग फल चाहते है तथा पके हुए फल चाहते है। ऐसे पके हुए फल तो नीची नजर से देखिए सैकड़ो की सख्या में पृथ्वी पर बिखरे हुए पड़े हैं। उन्हें बीन कर क्यो नही खा लेते ? भला वृक्ष को, डालियो को टहनियों को, गुच्छों को काटने तोड़ने की जरूरत क्या है ?"

उपर्युक्त विचारों के तारतम्य के आधार पर 'छः लेश्याओं का निम्न प्रकार से उद्भव होता है :—

कृष्ण लेश्या—मनोवृत्ति का निकृष्टतम रूप।

नील लेश्या—कुछ अच्छी मनोवृत्ति किन्तु ईर्ष्या, असहिष्णुता, लोलुपता युक्त।

कापोत लेश्या—मन, वचन, कर्म से वक्र परन्तु अपने स्वार्थ के साथ जीवों का भी संरक्षण करता है।

तेजो लेश्या—नम्र, दयालु, इन्द्रियजयी। केवल अपने सुख की ही अपेक्षा नहीं रखता अपितु दूसरों के प्रति भी उदार होता है।

पद्म लेश्या—कमल के समान अपनी सुगंधी से दूसरों को सुख देने वाला। सयमी, कषायों (क्रोध, मन, माया, लोभ) पर विजय पाने वाला, मितभाषी, सौम्य।

शुक्ल लेश्या—अत्यन्त शुद्ध मनोवृत्ति, समदर्शी, निर्विकल्प, ध्यानी, सावधान, वीतराग।

पहली तीन लेश्याएं त्याज्य हैं और अतिम तीन लेश्याएं ग्रहण करने योग्य हैं।

कषाय—कष और आय। कष का अर्थ है कर्म अथवा परिणाम में जन्म मरण। जिससे कर्मों का आय या बंधन होता है अथवा जिससे जीव को पुनः-पुनः जन्म मरण के चक्र में पड़ना पड़ता है वही 'कषाय' कहलाता है।

जो मनोवृत्तियाँ आत्मा को कलुषित करती हैं, जिनके प्रभाव से आत्मा अपने स्वरूप से भटक जाता है मनोविज्ञान की भाषा में वह कषाय है। आवेश और लालसा की वृत्तिया कषाय को जन्म देती हैं। कषाय चार प्रकार के है :—

क्रोध, मान, माया, लोभ,

(अ) क्रोधः- यह मानसिक किन्तु उत्तेजक संवेग है। यह विचार शक्ति एवं तर्क-शक्ति को शिथिल करता है। आवेश युयुत्सा (युद्ध) को

और युयुत्सा आक्रमण को जन्म देती है। आमाशय, रक्तचाप, हृदय की गति, मस्तिष्क के ज्ञानतंतु सब अव्यवस्थित हो जाते हैं। क्रोध की १० अवस्थाएं हैं जो भयंकरता उत्पन्न करती है।

(आ) अभिमान:- कुल, बल, ऐश्वर्य, बुद्धि, जाति, ज्ञान आदि अपनी किसी विशेषता का घमण्ड करना और उसे बढ़ा-चढ़ा कर कहना 'अभिमान' है। अभिमानी अपने बराबर किसी को नही समझता। वह अहंवृत्ति का पोषण करता है। अभिमान की १२ अवस्थाएं है।

(इ) माया—इसका अर्थ कपटाचार है। माया से पापाचार बढ़ता है। विश्वासघात, द्वेष और असत्यभाषण इसके निकटतम सम्बन्धी हैं। माया की १५ अवस्थाएं हैं।

(ई) लोभ—यह समस्त पापो का जनक है। इसके १६ भेद हैं। कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) आवेश की तरतम्यता और स्थायित्व के आधार पर चार चार भागों में बाँटे गये है जिनकी जानकारी होने से पाठक को बड़ा लाभ हो सकता है। क्रोध के विषय में नीचे बतलाया है। वैसा अन्य कषायो में भी समझना चाहिए —

(अ) अंनतानुबंधी क्रोध—पत्थर में पड़ी दरार के समान जो मिटती नही।

(आ) अप्रत्यारव्यानी क्रोध—जलाशय के सूखते हुए कीचड़ की भूमि में पड़ी दरार के समान जो आगामी वर्षा ऋतु मे मिटती है।

(इ) प्रत्याख्यानी क्रोध—रेत मे रेखा के समान जो जल्दी मिट जाती है।

(ई) संज्वलन क्रोधः- पानी मे खिची रेखा के समान जो खीचने के साथ ही मिट जाती है।

कषाय का दुष्परिणाम ससार के जीव आज तक भोगते चले आ रहे है। कषाय ने ही प्रेम, प्यार और प्रतीति का नाश किया है।

राग-द्वेष ही विष-वृक्ष है। वासना और कषाय से राग द्वेष को जन्म मिलता है। माया व लोभ से आसक्ति तथा आसक्ति से राग का प्रादुर्भाव होता है। क्रोध व मान से घृणा की उत्पत्ति हुई है और घृणा से द्वेष पैदा होता है। घृणा व आसक्ति ने ही वैर व ममता को आश्रय दिया है। समस्त ससार वासना और कषाय की अग्नि में जल रहा है।

भगवान् महावीर ने अपने सुन्दर प्रवचन में कहा है—

"शान्ति से क्रोध को, मृदुता से मान को, सरलता से माया को और सतोष से लोभ को जीतना चाहिए।"

——०——

अध्याय

5

भगवान् महावीर का कर्मवाद

[शुभ करो, शुभ होगा
अशुभ करो, अशुभ होगा]

[और शुद्ध आत्मतत्व मे लीन होगे तो शुद्ध होगा जो कर्मक्षय का कारण है ।]

पुद्गल द्रव्य की अनेक जातिया है । उनमें एक 'कार्मण वर्गणा' भी है । यही कर्म-द्रव्य है । कर्म-द्रव्य सम्पूर्ण लोक में सूक्ष्म रज के रूप में व्याप्त है । वही कर्म-द्रव्य मन, वचन और काय के योग (मिलान) द्वारा आकृष्ट होकर जीवात्मा के साथ बद्ध हो जाते है और 'कर्म' कहलाने लगते है ।

कर्म विजातीय द्रव्य होने के कारण आत्मा में विकृति उत्पन्न करते है और उसे पराधीन बनाते हैं ।

जीवात्मा पर-पदार्थो का उपभोग करता हुआ राग-द्व ष के कारण किसी कर्म को सुखरूप और किसी को दु'ख रूप मानता है । सुख दुःख की अनुभूति तो तत्काल ही समाप्त हो जाती है किन्तु बच रहे संस्कार समय आने पर अपना प्रभाव दिखलाते हैं ।

संसार के समस्त प्राणियों के पीछे राग द्वेष की वृत्ति काम करती है । वही प्रवृत्ति अपना एक संस्कार छोड़ जाती है । उस संस्कार से पुनः प्रवृत्ति होती है और प्रवृत्ति से पुनः संस्कार का निर्माण होता

है। इस प्रकार बीज और वृक्ष की तरह यह सिलसिला सनातन काल से चला आ रहा है।

जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। प्रश्न उठता है कि फल देने की शक्ति किसमें निहित है ?

कोई मनुष्य शराब पीता है। नशा उत्पन्न करने के लिए शराब को किसी की सहायता नही चाहिए। दुग्ध-पान से शरीर मे शक्ति आती ही है। भोजन करने से भूख मिटती ही है और जलपान से प्यास बुझती ही है। स्पष्ट है, इन पदार्थों को अपना फल देने के लिए किसी अन्य सहारे की तलाश नही करनी पड़ती। कर्म भी जड़ पदार्थ है। उनमे भी स्वय अपना फल प्रदान करने की शक्ति विद्यमान है।

कर्म बध का प्रधान कारण मन और उसके सहायक वचन तथा काय (शरीर) एव कषाय है जिनका जिक्र पहले किया जा चुका है।

आत्मा को स्वच्छ दीवार, कषायो को गोद और मन-वचन काय के योग को वायु मान लिया जाये तो कर्म बध की व्यवस्था सहज ही समझ मे आ जायेगी। आत्मा रूपी दीवार पर जब कषायों का गोद लगा रहता है तो योग की आंधी से उडकर आई हुई कर्म-रूपी धूल चिपक जाती है। वही 'चिपक' जितनी सबल या निर्बल होगी, 'बध' उतना ही प्रगाढ़ या शिथिल होगा और धूल श्वेत या काली जैसी भी होगी वैसी ही चिपकेगी। हां, कषाय का गोंद यदि हट जाये और दीवार सूखी रह जाये तो धूल का आना जाना तो नही रुकेगा, कि० चिपकना बद हो जायेगा। कर्म परमाणुओ का आना मन-वचन-काय की शक्ति अशक्ति पर निर्भर है। किन्तु बधन की तीव्रता-मंदता या चिपकना कषायों की कमी-बेशी पर निर्भर है।

वास्तव मे जन्म-मरण का मुख्य कारण कषाय हैं। कषाय के अभाव में मन-वचन-काय के योग लंगडे हो जाते है। कषायो का अन्त होते ही आत्मा को पूर्णत्व प्राप्त हो जाता है और 'घातिक कर्मो' का विध्वस हो जाता है।

'घातिक' और 'अघातिक, शब्दो से कर्मों की आक्रमण शक्ति (बर्बरता और मदता) को सूचित किया गया है। जीव की अनंत दर्शनज्ञान- आदि शक्तियो का घात (ह्रास) करने वाले कर्म 'घातिक' कहलाते है। परन्तु जो कर्म जीव के गुण विकास में बाधक नही होते अथवा व्याघात नही पहुँचाते वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। स्वभाव के आधार पर 'कर्म' के आठ विभाग किये जाते हैं :—

१ ज्ञानावरण	२. दर्शनावरण
३. वेदनीय	४. मोहनीय
५. आयुष्य	६. नाम
७. गोत्र	८. अतराय

—ज्ञानावरण के हटने से आत्मा में अनत ज्ञान शक्ति प्रकट होती है।

—दर्शनावरण के हटने से अनत दर्शन शक्ति जाग्रत होती है।

—वेदनीय का क्षय 'अनत सुख' प्रकट करता है।

—मोहनीय कर्म की जकड़ प्रबलतम होती है। इसके क्षय होने से 'परिपूर्ण सम्यक्त्व और चारित्र' का प्रादुर्भाव होता है।

—आयुष्कर्म के क्षय से 'अजर-अमरता की अनतकालीन स्थिति' (सिद्धगति) प्राप्त होती है।

—नाम कर्म के क्षय से 'अमूर्तत्व गुण' प्रकट होता है जिसे मुक्तात्मा एक ही जगह अवगाहन कर सकते है।

—गोत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व गुण प्राप्त होता है।

—अन्तराय के क्षय से अनन्त शक्ति (बलवीर्य) व विपुल लाभ प्राप्त होता है।

अध्याय

5

भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित "द्विविध धर्म"

धम्मे दुविहे पण्णत्ते,
तजहा-अगार धम्मे चेव,
अणगार धम्मे चेव" (ठाणांग सूत्रागम)

१. अगार धर्म :—

गृहस्थ में रहते हुए, तथा पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को निभाते हुए मुक्ति मार्ग की साधना करना अगार धर्म है। इसे श्रावक धर्म भी कहते है।

अनगार धर्म :—

जो विशिष्ट साधक गृह त्यागकर साधु जीवन अंगीकार करते हैं, पूर्ण अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की आराधना करते है उनका आचार अणगार (अनगार) धर्म कहलाता है।

—साधु उपर्युक्त 'व्रतो को पूर्ण रूप से पालन करता है।

—श्रावक (गृहस्थ) उन व्रतों को आशिक रूप में पालन करता है।

व्रत क्या है ?

जीवन को सुघड़ बनाने वाली, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली मर्यादाएँ नियम कहलाती हैं। जो मर्यादाएँ सार्वभौम हैं, प्राणिमात्र के लिए हितकारी हैं और अपने लिए भी शुभ हैं उन्हें 'नियम या व्रत' कहा जाता है। जीवन में अशुभ में आने वाले दोषों

को त्यागने का जब दृढ़ संकल्प उत्पन्न होता है, तभी व्रत की उत्पत्ति होती है।

नदी के दो किनारे उसके जलप्रवाह को नियंत्रित रखते है, थामे रखते है और उसे छिन्न-भिन्न होने से रोकते हैं। इसी प्रकार जीवन शक्ति को केन्द्रित करने और योग्य दिशा में ही उसका उपभोग करने के लिये 'व्रतों की परमावश्यकता है।

डोरी टूट जाने पर पतंग की क्या हालत होती है? उसे धूल में मिलना पड़ता है। ऐसे ही जीवन रूपी पतग को उन्नत रखने के लिए मनुष्य को व्रतो की डोरी' के साथ बधे रहने की आवश्यकता है।

मूलभूत दोष :—

पवित्रता की ओर अग्रसर होने के लिये सांसारिक पाप-दोषो को जानना और उनसे बचने की तरकीब करना व्रतधारी गृहस्थ अथवा साधु के लिये जरूरी है। संसार में प्राणियों के दोषो की गणना करना संभव नही। कुछ मूलभूत दोष ऐसे हैं जिनसे अनेक अन्य दोष उत्पन्न होते है। उन्हें दूर करने का व्रत गृहस्थ व साधु को लेना है :—

—हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह

उपर्युक्त पांच दोषों के कारण ही मानवता संत्रस्त और दुःखी हो रही है और कुचली जा रही है। इन्हीं के दुष्प्रभाव से मनुष्य मनुष्य नही रहता बल्कि दानव, राक्षस, चोर, लुटेरा, अनाचारी, लोभी, स्वार्थी, प्रपची, मिथ्याभावी आदि बन जाता है। यही दोष है जो आत्मा को निज-स्वरूप प्राप्त करने मे बाधक होते हैं। ये आत्मा के वास्तविक शत्रु हैं।

जब मनुष्य इन दोषो पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसे महात्मा बनने में अधिक बिलम्ब नही लगता ।

हिंसा :—

यह सबसे बडा दोष है । यह समस्त पापो का जनक है । मनुष्य की सभ्यता के इतिहास का सबसे बड़ा माप-दण्ड यह है कि युग-युगान्तर से उसने 'हिसक' से अहिसक बनने मे कितनी मजिले तय की है ।

हिसा 'प्रमाद' मे और अहिसा 'विवेक' में निहित है । मनोभावना ही हिसा-अहिसा की निर्णायक कसौटी है । भाव हिसा की मौजूदगी में होने वाली द्रव्यहिंसा (प्राणहिसा) ही हिंसा कहलाती है । डाक्टर के द्वारा सावधान रहते हुए भी, यदि किसी प्राणी की हिंसा हो जाये तो वह हिसा नही है । डाक्टर को उस हिसा का दोष नही लगेगा क्योकि डाक्टर की मनोभावना हिंसा करने की नही थी ।

असत्य :—

इसका अर्थ है अयथार्थ, अप्रशस्त । जो वस्तु जैसी है वैसी न कहकर अन्यथा कहना 'अयथार्थ असत्य' है । दूसरे को पीड़ा पहुँचाने के लिये दुर्भावना से निर्धन व्यक्ति को 'कगाल' कहना, चक्षुहीन को चिढाने के लिये 'अधा' कहना, दुर्बल को दु:खी करने के लिए 'मरियल' कहना अथवा हिंसाजनक व हिंसोत्तेजक भाषा का प्रयोग करना यह सब असत्य मे शामिल है, भले ही वह यथार्थ ही क्यो न हो ।

अदत्तादान चोरी :—

बिना पूछे किसी वस्तु को ग्रहण करना या स्वामी की अनुमति के बिना उसपर अधिकार करना, मार्ग मे गिरी पड़ी या किसी की भूली हुई वस्तु को हड़प जाना या उस पर अधिकार कर लेना अदत्ता-

दान कहलाता है। लालच पर जब कोई अंकुश नही रहता तभी चोरी की भावना पनपती है।

मैथुन

काम-वासना के वशीभूत होकर स्त्री और पुरुष जब पारस्परिक सम्बन्ध की लालसा करते है तो वह क्रिया मैथुन कहलाती है। मैथुन को "अब्रह्म" कहकर पुकारा गया है। यह पाप आत्मा के सद्‌गुणो का नाश करता है, शरीर को रोगी और निःसत्व बनाता है, समाज की नैतिक मर्यादाओ का उल्लघन करता है और उन्नति मे बाधक है।

परिग्रह

किसी भी पर-पदार्थ को ममत्व भाव से ग्रहण करना परिग्रह कहलाता है। ममत्व-मूर्छा (लोलुपता) ही वास्तव में परिग्रह है। भौतिक पदार्थो पर आसक्ति रखने से विवेक नष्ट हो जाता है। राग-द्वेष के वशीभूत होकर आत्मा अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है।

ये पाँच महान् दोष है जो ससार के सब दोषो के मूल कारण है। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की शान्ति इन्ही से भंग होती देखी जाती हैं। इनका सार समझना आवश्यक है।

जब इन दोषो को दूर किया जाता है तो यही गृहस्थ के पांच अणुव्रत तथा मुनि के लिये पॉच महाव्रत बन जाते है। गृहस्थ इन्हे आशिक रूप मे और साधु पूर्णरूपेण पालन करता है। इनके नाम ये है :—

१. अहिसा   २. सत्य   ३. अस्तेय
४. ब्रह्मचर्य   5. अपरिग्रह

गृहस्थ के लिये उपर्युक्त पाच अणुव्रतों की पोषणा करने के लिये तीज 'गुणव्रत' और चार 'शिक्षाव्रत' बनाये गये है।

तीन गुणव्रत

१. दिग्व्रत :—इस व्रत का धारण करने वाला समस्त दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा करता है और उससे बाहर सब प्रकार की क्रियाओं का त्याग करता है।

२. उपभोग परिभोग परिमाण :—एक बार भोगने योग्य वस्तु को 'उपभोग' कहते हैं, जैसे आहार आदि। बारम्बार भोगने योग्य वस्तु को 'परिभोग' कहते हैं—जैसे वस्त्र आदि। उपभोग परिभोग वस्तुओं की मर्यादा बाँध लेने से पाप पूर्ण व्यापारो का त्याग हो जाता है।

३. अनर्थदण्ड त्याग :—बिना प्रयोजन हिंसा करना अनर्थदण्ड कहलाता है। यह व्रत कामोत्तेजक कुचेष्टा और वार्त्तालाप, असभ्य वचन तथा हिंसाजनक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करता है।

चार शिक्षाव्रत

१. सामायिक व्रत—सब पदार्थों में तटस्थभाव अथवा 'समभाव' स्थापित करना इस व्रत का उद्देश्य है। पापमय व्यापारों का त्याग करके निश्चित समय के लिये आत्मचिंतन करने का दैनिक अभ्यास करना ही इस व्रत में अभीष्ट है।

2. देशावकाशिक व्रत—एक दिन या न्यूनाधिक समय के लिये दिशाओ का परिमाण करना और उस परिमाण के बाहर समस्त पाप कार्यो का त्याग करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है।

३. पौषधव्रत—जिससे आत्मिक गुणों या धर्म भावना का पोषण होता है, वह पौषधव्रत कहलाता है। एक रात-दिन उपवास करना,

अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, ध्यान, स्वाध्याय व आत्म-स्मरण करना और सर्व प्रकार की सासारिक उपाधियो से छुट्टी पाकर साधु-सरीखी चर्या धारण करना इस व्रत का उद्देश्य है।

4. अतिथि संविभाग—जिनके आने का समय नियत नही उन्हें अतिथि कहते हैं। साधु बिना सूचना दिये आते है। उन्हे सयमोपयोगी आहार पानी का दान करना अतिथि सविभाग व्रत कहलाता है। सग्रह वृत्ति को कम करने तथा त्याग भावना को विकसित करने के लिये इस व्रत की व्यवस्था की गई है। साधु के अतिरिक्त अन्य दीन-दुःखी व्यक्ति भी द्वार से निराश न लौटे।

उपरोक्त बारह व्रतो (५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत) का पालन करने से आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक न्याय तथा स्व-पर सुख की प्राप्ति होती है। इससे बन्धुत्व और शाँतिमय वातावरण उपजता है और संसार स्वर्गमय बन जाता है। ये व्रत हिसारहित स्वस्थ "समाजवाद" और "साम्यवाद" का दिग्दर्शन कराते हैं।

महावीर की देन संसार के लिये कितनी उपयोगी और शॉति-दायिक है।

——o——

अध्याय

6

मृत्यु कला

मनुष्य मात्र ने जीवित रहने, अच्छी तरह से जीवित रहने, सुख-सम्मान से जीवित रहने के लिये बडी बड़ी विद्याए और कलाए रच डालीं। पुरुषो के लिये ७२ कलाओं का और स्त्रियो के लिए ६४ कलाओ का विधान किया गया। मनुष्य दीर्घायु होकर १०० वर्ष तक जिये, इस सम्बन्ध में प्राचीन धर्मग्रन्थो तथा शास्त्रो में विवेचन किया गया है।

घर में नव-जात शिशु के आगमन पर खुशी के नगाड़े बज उठतें है, परन्तु इसके विपरीत, मृत्यु होने पर रोना, पीटना, हाय हाय करना जैसे शब्द सुनाई पड़ते है। मृत्यु का समाचार पाकर अपने-पराये सभी शोकातुर हो जाते है। कितना भयावह परिवर्तन है। कितना अंतर है 'जीवन' और 'मृत्यु' में।

क्या वस्तुतः मृत्यु ऐसी भयावह और निकृष्ट है? कोई भी मरना नही चाहता, सभी जीना चाहते हैं। जो व्यक्ति काल का ग्रास हो गया, वह कभी लौट कर नही आता।

प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते है—उज्ज्वल और अन्धकारमय अथवा आपत्तिग्रस्त।

भगवान् महावीर ने मृत्यु को बुरा नही कहा। मृत्यु से भयभीत होना अज्ञान का फल है। मृत्यु कोई विकराल दैत्य नही है। मृत्यु मनुष्य का मित्र है। मृत्यु एक मंजिल है किसी लम्बे संकट की। लम्बी साधना के पश्चात् मृत्यु एक विश्राम है और उसके पश्चात् फिर एक नया उल्लासमय जीवन आरम्भ होता है। यदि मृत्यु सहा-

थक न बने तो मनुष्य की उन्नति के मार्ग बन्द हो जायें—साधना, स्वर्ग और मोक्ष कल्पना की बाते बनकर रह जायें।

कारागार में एक व्यक्ति कैद है। तग कोठडी में सर्प और बिच्छु डॉस और मच्छर के हर समय काटने का भय है। काल-कोठडी की गर्मी से वह बेहाल हो रहा है। यदि कोई उसे इस भयकर कारागार से छुडा दे तो उसका कितना उपकार मानेगा वह कैदी !

इस शरीर के कारागार से छुडा देने वाली मृत्यु को क्यो न उपकारी माना जाये। इस जर्जर और रोगो से व्याप्त देह-रूपी पिजरे से निकालकर दिव्य देह प्रदान करने वाला मृत्यु से अधिक उपकारक और कौन होगा ?

वस्तुतः मृत्यु कोई कष्टप्रद वस्तु नही वरन् टूटी फूटी झोपडी को छोडकर 'नवीन भवन' में निवास करने के समान एक आनन्दप्रद कार्य है। किन्तु अज्ञानता के कारण पैदा हुआ वस्तुओं में ममत्वभाव इस नफे के व्यापार को घाटे का सौदा बना देता है। अज्ञानी जीव अपने परिवार और भोग साधनों के विछोह की कल्पना करके मृत्यु के समय हाय-हाय करता है, तडपता है, छटपटाता है और आकुल व्याकुल हो जाता है। परन्तु मर्मज्ञ तत्वदर्शी पुरुष अनासक्त होने के कारण मध्यस्थभाव मे स्थिर रहता है और जीवन भर के साधना के मदिर पर स्वर्णकलश चढा लेता है। वह परम शाँत एवं निराकुल भाव से अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है और इस प्रकार अपने वर्तमान को ही नही, वरन् भविष्य को भी मंगलरूप बना देता है।

संयमी और कर्त्तव्यशील जीवन ही सर्वोत्कृष्ट जीवन है। जब तक जीओ विवेक और आनन्द से जीओ, ध्यान और समाधि की तन्मयता से जीओ, अहिंसा और सत्य के प्रसार के लिये जीओ। और जब मृत्यु आवे तो आत्मसाधना की पूर्णता के लिये, पुनर्जन्म में अपने आध्या-

त्मिक लक्ष्य सिद्धि के लिये अथवा मोक्ष के लिए मृत्यु का भी समाधि पूर्वक वरण करो।

भगवान् महावीर ने "मृत्यु विज्ञान" के विशद विवेचन में मृत्यु के १७ प्रकार बताये है। इनमें इंद्रियाधीन, कषायाधीन, शोकाधीन, मोहाधीन होकर मृत्यु को प्राप्त होना ऐसा है जैसा किसी गृद्ध, बाज आदि ने किसी निरीह पक्षी-शावक को नोच दबोच लिया हो और उसे अपना ग्रास बना लिया हो। अन्त में 'समाधि-मरण' को उत्कृष्ट बतलाया गया है।

प्राणाँतकारी सकट, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा अथवा असाध्य रोग होने पर जब जीवन का रहना सम्भव प्रतीत न हो तो उस समय समाधिमरण अगीकार किया जाता है। इसे "मृत्यु-महोत्सव" की भावपूर्ण संज्ञा दी गई है।

समाधिमरण अंगीकार करने वाला महासाधक सब प्रकार की मोह ममता को दूर करके शुद्ध आत्मस्वरूप के चिंतन में लीन होकर समय गुजारता है। उसे नीचे लिखे दोषो से बचने के लिये सतर्क रहना होगा।

१. इस ससार के सुखो की कामना करना।

२. परलोक के सुखो की इच्छा करना।

३. समाधिमरण के समय पूजा प्रतिष्ठा देख अधिक जीने की इच्छा करना।

4. भूख, प्यास, रोगजनित व्याधि से कातर होकर जल्दी मरने की इच्छा करना।

5. इन्द्रियो के भोगों की आकांक्षा करना।

सांसारिक भोगोपभोगो को त्यागकर आत्म-भाव में रमण करने वाले वीर पुरुष मृत्यु से भयभीत नही होते वरन् उसे अपना मित्र समझते है। इस महान् कला को याद रखने और इस पर आचरण करने में ही हमारा हित है।

अध्याय

7

भगवान् महावीर

[आध्यात्मिक सैनिक सेवा-दल]

भगवान महावीर ने 'मानवता के मुख को उज्ज्वल करने के लिये भारतीय समाज को "अहिसा" का जो कवच प्रदान किया उसका विशेष सद्प्रभाव पड़ा। उनके "अहिसा-आन्दोलन" की विहार-भूमि अधिकतर मगध एव उसके आसपास का क्षेत्र रही। उन्होने एक ऐसा नि:स्वार्थ सैनिक-दल तैयार किया जिसकी 'धर्म-घोषणा' का प्रभाव मगध (बगाल, बिहार), उड़ीसा, उत्तरी भारत, मध्य प्रदेश, पश्चिमी भारत, दक्षिण तथा सुदूर दक्षिणी प्रातों पर विशेष रूप से पड़ा। इसके फलस्वरूप समय समय पर, कई शताब्दियो तक, अहिसक मुनियो या साधुओ ऐसे 'कर्मठ नेता' (आचार्य), मैदान में आते रहे जिन्होने 'अहिसा, को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिये जी-जान से कार्य किया।

इन आचार्यों की प्रकाण्ड विद्वत्ता, उच्च आदर्श, तप-त्यागमय जीवन तथा ओजस्विनी वाणी का प्रभाव 'राजा से लेकर रंक तक पड़ा। जन-जन के आचार विचार में एक सद्क्राति आई। फलत: कर्त्तव्यशीलता, प्रेम, सहिष्णुता और समानता की भावनाओ को संपुष्टि मिली। समय समय पर धर्म-वाचनाए (धर्म सभाए) करके कुछेक आचार्यो ने भगवान् महावीर की दिव्य-वाणी को संकलित किया जिसने 'आगम' का रूप धारण किया। आचार्य भद्रबाहु स्वामी तक बिना किसी मत भेद के, अबाध गति से, 'वीर वाणी' का प्रसार हुआ।

जैन परम्परा में ५०० से अधिक विशिष्ट साहित्यकार ऋषि पुंगव प्रतिभा संपन्न आचार्य रत्न हुए जिन्होने संस्कृत, प्राकृत, मागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश, तामिल, कर्नाटक आदि भाषाओं में १५००० के लगभग ग्रंथ लिखे जिनमें आत्मिक उत्थान और लोक कल्याण की भावना पद पद पर दृष्टिगोचर होती है।

दर्शन, सिद्धान्त, काव्य, नाटक, पुराण, चरित्र, उपन्यास, कहानी चम्पू, स्तुति, भक्ति, मंत्र, तत्र, ज्योतिष, जीव विज्ञान, वैद्यक, चरित्र निर्माण, मूर्ति विज्ञान, भवन निर्माण, चित्र, रत्न परीक्षा, इतिहास, अष्टांग योग, नीति, मुनिधर्म, श्रावकधर्म, कविता, कला राजधर्म, पशुजगत, गणित और मानव जीवन को सुखी बनाने और जगत में सम्मानपूर्वक जीने की कला आदि विषयों पर भारत की प्रत्येक भाषा में साहित्य का निर्माण किया।

इसके पश्चात् गृहस्थ विद्वानो भट्टारको, यतियों और उनके पडितों ने प्रान्तीय भाषाओ में हिन्दी, मराठी, गुजराती, बगला, उर्दू और विदेशी भाषा अंग्रेजी और फ्रेच भाषा में जैन ग्रन्थों की रचना की। जिनमे अधिकांश अनुवाद और अधिक संख्या में मौलिक ग्रन्थों की रचना हुई जिनके द्वारा जन साधारण का महान् उपकार हुआ।

भ० महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी हुए। गौतम स्वामी, सुधर्म स्वामी और जम्बू स्वामी तीनो केवली हो निर्वाण को प्राप्त हुए।

प्रमुख आचार्गों के नाम

१ गणधर सुधर्मा स्वामी

२ आचार्य जम्बू स्वामी

३ आचार्य प्रभव स्वामी

४ आचार्य विष्णु कुमार

५ आचार्य शय्यभव सूरि
६ आचार्य नंदिमित्र
७ आचार्य यशोभद्र सूरि
८ अस्कार्य अपराजित
९ आचार्य संभूति विजय
१० आचार्य गोवर्धन
११ आचार्य भद्रबाहु स्वामी

आचार्य भद्रबाहु

[द्रविड एकता के प्रतीक]

भगवान् महावीर के निर्वाण के ५६ वर्ष पश्चात् आचार्य भद्रबाहु को जितना अधिक सम्मान, पदवी तथा श्रद्धांजलि उपस्थित करें तुच्छ प्रतीत होता है। आपने अपने योग-बल से मगध की जनता और सम्राट् चद्रगुप्त को भविष्य में होने वाले द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष का सकेत किया। उन्ही के उपदेशों का परिणाम था कि सम्राट् चंद्रगुप्त **उनके साथ दक्षिण यात्रा में गया** और **शिष्यत्व स्वीकार करते हुए,** उनकी शिक्षाओं को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन का कल्याण किया। यह तथ्य 'श्रवणबेलगोल' की चंद्रगुफा के लेख से सिद्ध होता है।

आचार्य भद्रबाहु के साथ १२०० मुनियों का संघ दक्षिण पथ को गया था। वे सारे दक्षिण में फैल गये। उन्होने वहाँ अहिंसा सिद्धान्त का खुलकर प्रचार किया। 'कलभ्र' 'होयसल' 'गग आदि राजवशो के नरेशो तथा जनता ने आचार्य भद्रबाहु के मुनियों का भव्य स्वागत किया, उनकी शिक्षाओ पर आचरण किया, जिनमदिर बनवाये तथा व्यवस्था व व्यय के लिये ग्राम-दान दिये।

अत: महान् श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु आर्यों और द्रविड़ो की एकता का कारण बने। अथवा यू कहिये कि उत्तरी भारत की विचार

धारा में और दक्षिणी भारत की विचारधारा में सामंजस्य कायम करते हुए कि "भारत एक राष्ट्र है" इसकी एकता की नीव में एक "सशक्त शिलान्यास" रख गये ।

आचार्य स्थूल भद्र
आचार्य महागिरि
आचार्य सुहस्ति
आचार्य गुण सुन्दर आदि अनेक

आचार्यो ने जनता मे जैन धर्म की विशेष छाप लगाई। आर्य सुहस्ति के शिष्य गुणसु दर ने महाराज अशोक के पुत्र सम्राट सम्प्रति की सहायता से भारत के विभिन्न प्रांतो के अतिरिक्त अफगानिस्तान, यूनान और ईरान आदि एशिया के राष्ट्रो में भी जैन धर्म (अहिसा धर्म) का प्रचार किया ।

सूत्रयुग के प्रतिष्ठापक 'उमास्वाति' व जैन तर्कशास्त्र के व्यवस्थापक तथा प्रतिष्ठापक 'समत भद्र' और सिद्धसेन दिवाकर' के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब से पूर्व आचार्य 'कुन्दकुन्द' ने आध्यात्मिक ग्रंथो की रचना करके समाज और साहित्य की अश्चर्यजनक सेवा की ।

अनेक आचार्यों और मुनियो ने भगवान् महावीर की शिक्षाओ से प्रेरित होकर देश के कोने कोने मे अहिसा धर्म का प्रचार किया, साहित्य का निर्माण किया और अंध-श्रद्धा मे ग्रसित जन समूह को सन्मार्ग दिखाया।

गुजरात नरेश 'कुमारपाल' की अहिसा की दीक्षा, दक्षिण में 'विजयनगर' की राज्यव्यवस्था मे अहिसा की प्रतिष्ठा तथा विहार और मथुरा प्रदेशो मे अहिसक वातावरण उत्पन्न करने मे भी इन आचार्यो का सक्रिय योगदान रहा है।

जैनाचार्यों ने, जैन मुनियों ने अहिसा, तप व त्याग की कसौटी पर जो उच्चादर्श समाज के सामने रखा है वह आज भी भारत के लिये गौरव की बात है।

सौराष्ट्र में 'अहिसक भावना' को जो उल्लेखनीय प्रश्रय मिला है, 'वह जैनाचार्यों की ही देन है। उसका सुन्दर परिणाम अनेक रूपों में हमारे सामने आया है। स्वामी दयानंद ने वेदों का जो 'अहिंसा-परक' अर्थ किया और महात्मा गांधी ने जो 'अहिंसा नीति' अपनाई, उसके पीछे सौराष्ट्र का शताब्दियों का अहिंसामय वातावरण ही कारण है। गांधी जी को तो बेचर स्वामी ने विलायत जाने से पूर्व "मद्य, मांस और परस्त्रीगमन" का त्याग करवाया था। कवि 'रायचंद्र जैन के प्रति उन्होने अपना आदर भाव प्रकट किया है। "मेरे जीवन पर जिन व्यक्तियो की छाप है उनमें रायचंद्र भाई मुख्य हैं"। और इसीलिये उनके सम्बन्ध में उनकी लेखनी से आभारपूर्वक उद्‌गार व्यक्त हुए हैं।

इस अणुयुग मे जैनाचार्यों द्वारा प्ररूपित महावीर की अहिंसा ही शान्ति ला सकती है। परन्तु कई राष्ट्र अपनी हिंस्रवृत्ति को छुपाने के लिये 'अहिंसा का लबादा' ओढते हैं। यह खतरनाक है। अहिसा हृदयों से फूटनी चाहिये और कार्यरूप में प्रकट होनी चाहिये।

विश्व सभ्यता के विकास की कहानी यही है—कि "किस दर्जा उसने अहिसा को अपनाया।"

——•——

अध्याय 8 क

राज-शक्ति का अहिंसा प्रचार में योगदान

भगवान् ऋषभ देव से लेकर भगवान् महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों का जन्म राजवशों में हुआ। प्रत्येक तीर्थंकर के काल मे अनेकानेक जैन राजे भी हुए, जिन्होने जैनेद्रीय दीक्षा धारण की परन्तु आधुनिक इतिहास की पहुँच वही तक नही है। यहाँ केवल भगवान् महावीर के समय मे हुए तथा पश्चाद्‌वर्ती कुछ राजाओं का वर्णन कर देना उपयुक्त प्रतीत होता है जिन्होने अहिंसा-धर्म की प्रभावना में प्रशसनीय योग दान दिया।

चेटक तथा अन्य राज-श्रेणी

राजा चेटक को भगवान् महावीर का प्रथम 'श्रमणोपासक' होने का श्रेय मिला। वह वैशाली के अति प्रभावशाली और वीर राजा थे। वह अट्ठारह देशो के गणराज्य के अध्यक्ष थे। उनके 'अहिसा-प्रेम' का पारावार यह था,—"मै प्रतिज्ञा करता हू कि मै अपनी कन्याओ को उन राजाओ के साथ ब्याहूगा जो 'अहिंसक' विचारो के होगे।"

सिंधु सौवीर के "उदयन", अवंती के 'प्रद्योत,' कौशाम्बी के 'शतानीक,' चम्पा के 'दधिवाहन' और मगध के 'श्रेणिक' राजा चेटक के दामाद थे। इन मे से राजा उदयन ने तो भगवान् महावीर के निकट जैनेश्वरी दीक्षा भी ग्रहण की थी।

मजे की बात यह है कि कट्टर अहिसक प्रवृत्ति के होते हुए भी राजा चेटक ने "नीति की प्रतिष्ठा की" और शरणागत की रक्षा के लिये मगधराज कुणिक (कोणिक) के साथ भीषण सग्राम किया।

उपयु क्त उदाहरण से उन लोगो को मालूम होना चाहिए जो अहिसावादियो पर यह दोषारोपण करते है कि वे बुज़दिल और कायर होते है और युद्ध करने से घबराते है या कतराते है। युद्ध मुनि के लिए ता वर्जित हो सकता है परन्तु गृहस्थ के लिए कदापि नही। नीति की रक्षा क लिए एक सर्व हितकारी उद्देश्य की प्रतिष्ठा के लिए तथा कर्त्तव्य परायणता के रूप मे युद्ध की अनिवार्यता का सच्चे अहिसक ने कभी टाला नही।

ससार आभ्यतरिक शत्रुओ से पीड़ित है। जो योद्धा अंदर के दुर्जेय शत्रुओ (काम, क्रोध, मान, माया, लोभ) पर विजय प्राप्त करने के लिए उद्यत ह, भला वह बाहरी राजाओ से क्यो डरेगा, उनसे युद्ध करने से क्या घबराएगा ?

मगधपति बिम्बसार और सम्राट् कुणिक

इतिहास प्रसिद्ध मगधपति बिम्बसार जैन साहित्य मे 'श्रेणिक' के नाम से प्रसिद्ध है। राजा श्रेणिक का भगवान् महावीर के साथ वार्त्तालाप अत्यत रोचक तथा शिक्षाप्रद है। श्रेणिक के पुत्र सम्राट् कुणिक भी भगवान् महावीर के परम भक्त थे। कुणिक के पुत्र 'उदयन' ने भी जैन धर्म की ही शरण ली थी।

काशी कौशल

काशी कौशल के अट्ठारह लिछवी और मल्ली राजाओ ने भगवान् महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाया था। इससे प्रतीत होता है कि यह सब राजा जैन धर्म से प्रभावित थे।

मौर्य सम्राट् और उनकी सेवाएं

मौर्य शासको से पूर्व मगधदेश का "नद राजवश" प्रधान था।

नंद वश के राजाओं की सैन्यशक्ति व वैभव अतुलनीय थे। इन राजाओं में अधिकांश जैन धर्मानुयायी थे और उनमे सम्राट् नद वर्द्धन मुख्य थे। उन्होंने लगभग समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया था और कलिंग में अपनी विजय का नाद बजाया था। उनके पश्चात् नदवश का ह्रास आरम्भ होता है।

'महानद' नाम के नंदवंशी नृप की जब मृत्यु हुई तो उसकी एक रानी शूद्रजाति से थी जिसका पुत्र बलवान् था परन्तु अन्य रानियो की संतानें अल्पायु थी। फलत: अपने पिता की आंख मिचते ही शूद्रजात नद पुत्र "महापद्म" राज्य का स्वामी बन बैठा। शेष राजकुमारों को अपनी जान बचाने के लिये मगध को छोड़ना पड़ा। वे मजबूर होकर अन्य सुरक्षित स्थानो को चले गये।

इन्ही राजकुमारों में एक चंद्रगुप्त भी था। यह विवादास्पद प्रश्न है कि चंद्रगुप्त नदराजा का पुत्र था या नही। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि उसका नंदवश से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हिन्दू पुराणों में चंद्रगुप्त का उल्लेख नंदेंदु" आदि विशेषणो द्वारा हुआ मिलता है। अत: 'चंद्रगुप्त' क्षत्रिय वंश का भूषण था और यही आगे चलकर मौर्य राज्य का संस्थापक हुआ।

कोई एक विद्वान् चंद्रगुप्त की मां को एक 'नाइन' बतलाने की गलती करते हैं। प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रथो में उनका क्षत्रिय होना प्रमाणित है। 'मुद्राराक्षस' नामक अर्वाचीन नाटक ग्रंथ में ही केवल उनका नाम "वृषल" नाम से हुआ है, किन्तु वृषल का अर्थ 'नीच के अतिरिक्त 'धर्मात्मा भी है जैसे:—

वृषं-सुकृतं लातीति वृषल:

इसीलिये चंद्रगुप्त को शूद्राजात बतलाना ठीक नही है।

जिस समय महापद्मनंद ने मगध सिंहासन को हथिया लिया था, उस समय चंद्रगुप्त बालक ही थे। उनकी माता मौर्याख्य देश के "मोरिय" क्षत्रियो की कन्या थी। वह अपने इस लाल को लेकर उसकी ननिहाल पहुंची। मोरिय क्षत्रियों ने सहर्ष उनका स्वागत किया और उनकी रक्षा का वचन लिया। एक क्षत्रिय की इससे अधिक खुशी क्या हो सकती है कि वह शरणागत को अभय प्रदान करे, तिस पर चद्रगुप्त तो उन्ही के खास अश थे।

महापद्मनद ने देश पर आक्रमण कर दिया और अनेकयोद्धाओ को मौत के घाट उतार दिया। इस संकट काल में चद्रगुप्त को अपनी माता से विदा होना पड़ा। वह पश्चिमी भारत की ओर तक्षशिला को चला गया। उम समय ३२६ ई० पू० सिकदर महान् का भारत पर आक्रमण हो चुका था और सीमाप्रात और पजाब के कुछ हिस्से पर उसका अधिकार भी हो चुका था। चद्रगुप्त ने यूनानी शिविर में रहकर उनकी राजनीति और सैन्य व्यवस्था का अवलोकन किया। सिकंदर से अनबन होने पर चद्रगुप्त को वहा से खिसकना पड़ा। उसकी भेंट एक ऐसे विलक्षण और उग्र स्वभावी व्यक्ति से हुई जो महापद्मनद द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिये आतुर हो रहा था। यह चाणक्य नाम का ब्राह्मण था। वे परस्पर एक दूसरे के सहायक बन गये।

जैन ग्रथों में चाणक्य को एक "चणक" नामी जैनी ब्राह्मण का पुत्र लिखा है जो अपने जीवन के अत काल मे जैन मुनि हो गया था। इस सम्बन्ध मे अधिक खोज की आवश्यकता है ताकि कुछ ऐसे तथ्य जिनपर अभी पर्दा पड़ा हुआ है, प्रकाश में लाये जाये।

चंद्रगुप्त के मन में मगधराज 'महापद्मनंद' को राजच्युत करने व बदला लेने की प्रबल इच्छा थी और उधर चाणक्य भी चद्रगुप्त के

स्वप्नों को साकार करने के लिये कटिबद्ध हो गया था। प्रजा भी नद राजा से असन्तुष्ट थी और उसने हृदय से चद्रगुप्त का साथ दिया। परिस्थिति अनुकूल थी। चद्रगुप्त ने मगधराज पर धावा बोल दिया और चाणक्य की कुटिल राजनीति अत मे सफल हुई। चाणक्य को उसकी सफल 'कुटिल नीति' के आधार पर "कौटिल्य" भी कहते है। नद राजा 'महापद्म' की पराजय हुई और चद्रगुप्त को मगध का राज-सिंहासन मिल गया।

सिहासनारूढ होने पर अपने परोपकारी चाणक्य को मन्त्रिपद दिया परन्तु चाणक्य ने बड़ी सावधानी से यहाँ भी अपनी राजनीति बरती। उसने 'प्रधान मत्री' का पद नदराजा के भूततूर्व जैन धर्मानुयायी मत्री 'राक्षस' के सुपुर्द करने की सलाह दी। अतः राक्षस चंद्रगुप्त का प्रधानमत्री बना। इस प्रकार चाणक्य ने अपनी बुद्धिमत्ता से 'शत्रु' को भी चंद्रगुप्त का विश्वास-पात्र राजभक्त बना दिया।

चद्रगुप्त ने एक नया मुख्य कार्य किया। उसने अपने वश का नाम पितृ वश (नद वश) के आधार पर नही रखा। एक तो नदवश बहुत बदनाम हो गया था, दूसरे उसकी प्राणरक्षा करने और जीवन को समुन्नत बनाने का श्रेय उसके ननिहाल के 'मोरिय' क्षत्रियो को प्राप्त था जो चद्रगुप्त के कारण नंदराजा द्वारा तबाह कर दिये गये थे। मातृवश 'मोरिय अथवा मौर्य' के प्रति वह अत्यन्त कृतज्ञ था। उस समय मौर्य क्षत्रिय थे, तो मौर्य ब्राह्मण भी मिलते थे। इस प्रकार 'मौर्य' नाम उस देश की अपेक्षा प्रसिद्ध था, वह केवल जाति सम्बोधक नाम ही न रह गया था। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए चद्रगुप्त ने अपने वश का नाम "मौर्य" रखने मे गर्व अनुभव किया। यही "मौर्य" भारतवर्ष के लिये विशेष गौरव-वाचक शब्द बन गया।

चाणक्य की नीति का "सुदर्शनचक्र" इस सफलता से चला कि

दक्षिण को छोड़ चंद्रगुप्त शेष सारे भारत का सम्राट् बन गया। सिकदर की मृत्यु के पश्चात् उसके मुख्य सेनापति 'सेल्यूकस निकेटर' ने अपने स्वामी के पदचिन्हो पर चलकर ससार विजेता बनने की कुचेष्टा की। उसने समझा कि मै भारत को रौद डालूगा। वह भारी दल-बल लेकर भारत की सीमाओ पर आ उपस्थित हुआ।

सम्राट् चंद्रगुप्त का बल 'चणक' पुत्र चाणक्य था। युद्ध मे भारतीय सैन्यसचालन इतने ऊचे दर्जे का किया गया कि सेल्यूकस के लिए हार मानने के सिवा और कोई चारा न रहा।

भारतीय सभ्यता का सद्व्यवहार देखिये। सेल्यूकस को अपमानित नही किया गया। उसके साथ सधि की गई और केवल पजाब, गाधार (अफ़गानिस्तान आदि) जो पहले से भारत के इलाके माने जाते थे, वापिस लिये गये। और किसी इलाके की अपेक्षा नही की गई।

प्रतीत होता है कि सेल्यूकस भारतीय सभ्यता के उच्च विचारों से प्रभावित हुआ। उसने चद्रगुप्त से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह उससे करके, उसे अपना जामाता बनाने की इच्छा प्रगट की। चन्द्रगुप्त ने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। युद्ध और शत्रुता का वातावरण प्रेम और प्रणय-सूत्र में परिवर्तित हो गया। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस के सम्मानार्थ उसे ५०० हाथी भेट किये। दौत्य सम्बन्ध भी स्थापित किये गये। यूनानी राजदूत 'मेगस्थनीज' मौर्य-दरबार में रहा। इस मैत्री सम्बन्ध से दोनों देशो को बहुत लाभ पहुंचा।

चन्द्रगुप्त की इस महान् विजय पर इतिहास की दृष्टि से अवलोकन किया जाना चाहिए। इसके पूर्व सिकन्दर की भारत-विजय

(केवल भारत सीमा विजय) को इतिहासकार बड़ा महत्व देते हैं और कहते हैं—

"सिकन्दर की वियज "पश्चिम" की पूर्व" पर विजय है"।

तो क्या चन्द्रगुप्त की सेल्यूकस पर विजय "पूर्व" की "पश्चिम" पर महान् विजय नहीं है ?

आज के भारत को चद्रगुप्त की इस विजय से एक बात सीखनी चाहिये कि केवल बाहुबल या अस्त्र-शस्त्र- बल से ही रण नही जीता जा सकता, बल्कि उसमे बुद्धि-कौशल भी चाहिये। युद्ध नीति धर्म-नीति से एक अलग चीज है। युद्ध-नीति को न समझने से भारत को शताब्दियो तक पददलित और तिरस्कृत होना पड़ा है।

उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चद्रगुप्त ने दक्षिण को भी अपने राज्याधिकार में किया ऐसा जैन इतिहास मानता है, आधुनिक इतिहासज्ञ भी तथ्य को अब स्वीकार करने लगे है।

उस जमाने में जबकि रेल, मोटर, हवाई जहाजजैसी तेज सवारी तथा तार व बेतार जैसे विद्युत गति से समाचार पहुचाने वाले साधन सुलभ नही थे तो भी चाणक्य की सहायता से ऐसा सुदर और अद्वितीय राज्यशासन कायम किया गया जो आगामी शासको के लिये 'पथप्रदर्शक' बना। चाणक्य ने निम्न प्रकार से एक राजा का कर्त्तव्य निर्दिष्ट करके चँद्रगुप्त को तदनुकूल दीर्घकाल तक राज भोग करने के योग्य बना दिया था :—

"जो राजा पढ़ लिखकर प्राणिमात्र के हित में तत्पर रहता है और प्रजा का शासन तथा शिक्षण करता है, वह चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग करता है" (कौटिल्यअर्थ शास्त्र से उद्धृत)

चंद्रगुप्त द्वारा शासन प्रबंध इतने अच्छे ढग से किया गया कि जिससे लोगो मे सुख-शान्ति, सच्चाई और धार्मिक भावो की उन्नति हुई। प्रजा इस को राम-राज तुल्य मानती रही।

मनुष्यों को ही नही प्रत्युत पशुओ को भी ज्यादा से ज्यादा सुख और कम से कम दुःख पहुँचाने का ध्यान रखा गया था। उस समय "पशु-धन का आदर किया जाता था। पशुओ को "मनुष्य का मित्र और सहायक" माना जाता था। पशु मनुष्य के जीवन को सुखी बनाते थे, अत· उन्हें दुःख पहुचाना या उनका हनन करना वर्जित था। विशेष प्रकार के पशुओ के वध करने का अर्थ "मृत्यु दण्ड" था।

जैन धर्म से चद्रगुप्त का ससर्ग बाल्यकाल से ही रहा प्रतीत होता है। नद वश की आस्था तो जैन धर्म मे थी ही, उधर "मौर्याख्य देश" में भी भगवान् महावीर का उपदेश प्रभावकारी सिद्ध हुआ था। इस तरह चद्रगुप्त बचपन से ही जैन धर्म के स्वाधीन और सर्वसुखकारी आलोक मे बढे थे। श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु उनके धर्म गुरू थे। मेगस्थनीज ने भी लिखा है।

"चन्द्रगुप्त श्रमण गुरुओ की उपासना करता था और उनको आहार दान देता था।" जैन मुनियो की अहिंसामय शिक्षा का ही परिणाम था कि चन्द्रगुप्त का राज्य प्राणिहित के लिए "दयामय" था।

मगध में निरन्तर अनावृष्टि के कारण घोर दुर्भिक्ष के लक्षण प्रतीत होने लगे। श्रमणपति भद्रबाहु उस समय मुनि सघ के साथ दक्षिण की ओर जाने को तैयार हुए थे। चन्द्रगुप्त के राज्य का यह नियम था कि "जिस देश मे फसल अच्छी हो, राजा उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जाये।"

मालूम होता है इसी नियम के अन्तर्गत ही चन्द्रगुप्त आचार्य

भद्रबाहु के साथ हो लिये और 'जैन मुनि' बनकर] आत्म कल्याण में लीन हो गए।

प्राचीन जैन ग्रथ "तिलोयपण्णति" मे चन्द्रगुप्त को ही इस काल में अन्तिम मुकुटबद्ध राजा लिखा है जिसने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी। वह श्रवणबेलगोल के स्थान पर ठहर गये थे। उन्होने यहां एक छोटी सी पहाड़ी पर एक गुफा मे तपस्या की थी, जिसे "चन्द्रगुफा" के नाम से पुकारते है। चन्द्रगुप्त का समाधिकरण भी यहीं हुआ था।

बिंदुसार

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् साम्राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र बिदुसार बना जो "अमित्रघात" उपाधि से विख्यात हुआ। वह अपने पिता के समान वीर योद्धा था। जैन इतिहास में उसका नाम "वीर सेन" लिखा है, उसमें यह भी लिखा है कि बिंदुसार अपने पुत्र "भास्कर" (अशोक) के साथ श्रवणबेलगोल की ओर भ्रमण करने के लिये गया था।

अशोक

बिन्दुसार के पश्चात् मगध साम्राज्य की बागडोर "अशोक वर्द्धन' के हाथो में आई। अपने पूर्वजों के समान अशोक भी अपने जीवन के आरम्भ काल मे "जैन धर्मानुयायी" था और उसने अपने पितामह (चन्द्रगुप्त) के समाधि स्थान श्रवणबेलगोल में कई एक स्मारक बनवाये थे। अपने जीवन में उसने लोक-कल्याण के लिए "सर्वमान्य दिशाओ" का प्रचार किया परन्तु बौद्ध साधुओं से प्रभावित होकर उसने बुद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

सारे जीवन में अशोक ने एक ही युद्ध किया और कलिंग विजय

के पश्चात् वह "अहिंसा धर्म" पर आचरण करने लगा था। Early Faith of Asoka नामक पुस्तक के अनुसार अशोक ने अहिंसाविषयक जो नियम प्रचारित किये, वे बौद्धों की अपेक्षा जैनो के साथ अधिक मेल खाते थे। "पशु पक्षियो को न मारने, वनो को निरर्थक न काटने और विशिष्ट तिथियो एवं पर्वो में जीवहिसा बद रखने आदि के आदेश जैन धर्म से मिलते हैं।"

सम्प्रति

अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य दो भागों में बट गया। उत्तार पूर्वी भाग पर उसका पुत्र "दशरथ" अधिकार करके बैठ गया और पश्चिमीय भाग पर "सम्प्रति" का अधिकार हो गया। सम्प्रति ने अपने पिता के अनुसार यह अनुभव किया कि नरसहार करके प्राप्त की गई विजय, सच्ची विजय नही है। सच्ची शान्ति अहिंसा के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है"।

अत: सम्प्रति ने प्रख्यात जैन मुनि "आर्य सुहस्ति" से जैन धर्म अगीकार किया। सम्राट् सम्प्रति ने अनार्य देशों में जैन धर्म के उद्देश्य से जैन धर्माराधको के लिए धर्म स्थानो की व्यवस्था करवाई। अनार्य प्रजा के उत्थान के लिये सम्प्रति ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने वहा धर्म-प्रचारक भेजकर जैन धर्म की शिक्षाएँ प्रसारित की।

अनेक विद्वानों का मत है कि आज जो शिला लेख अशोक के नाम से प्रसिद्ध है, सम्भव है उन अनार्य देशो में वे सम्राट् मम्प्रति के लिखवाये हुए हो।

——o——

अध्याय

8 ख

सम्राट् खारवेल

[राज शक्ति का अहिंसा प्रचार में योगदान]

अब हम एक ऐसे भारतीय सम्राट् का उल्लेख करेंगे जिसने अपने बाहुबल से लगभग सारे भारत को जीता और अपने सुकृत्यों से शूरवीरता और धर्मवीरता की एक ऐसी यादगार छोडी जो जैन-धर्म के लिये अत्यंत गौरव की बात है।

प्राचीन काल में 'उड़ीसा' नामक भारती प्रात "कलिग देश" के नाम से सुप्रसिद्ध था। प्रागैतिहासिक काल मे भगवान् ऋषभदेव के एक पुत्र वहा के शासनाधिकारी थे। जिस समय भगवान् ऋषभदेव कलिग मे धर्मोपदेश करने पहुचे तो वहाँ के राजा राजपाट छोड़कर मुनि बन गये। तत्पश्चात् दीर्घ काल तक "कौशल" का राजवश ही कलिग पर शासन करता रहा

सम्राट् 'ऐल', खारवेल के पूर्वज, चेदि राष्ट्र तथ I दक्षिण कौशल से आकर कलिग पर राज करने लगे। उनका 'ऐल' विरद उन्हे उत्तर कौशल के "ऐलेय" राजा से सम्बधित करता है।

जब खारवेल ने सोलहवे वर्ष मे कदम रखा तो अकस्मात् उनके पिता की मृत्यु हो गई। राज्य प्रथानुसार २५ वर्ष की आयु में उनका राज्याभिषेक हुआ। उन्होने प्राचीन "तोसली" (टोसाली) को ही अपनी राजधानी बनाये रखा। सिहासन पर बैठते ही उन्होंने अनेक प्रजाहितार्थ कार्य किये। पुरानी इमारतों का जीर्णोद्धार, सिचाई के

लिये तालाबो तथा नहरो का बनवाना, नई इमारतो की तामीर आदि कुछ ऐसे सर्वप्रिय कार्य किये जिससे वह अपनी प्रजा के स्नेहभाजन बन गये ।

अब उन्होने अपनी तलवार म्यान से निकाली और दिग्विजय के लिये अपनी राजधानी से प्रयाण किया । सर्वप्रथम उन्होने पश्चिमीय भारत पर आक्रमण किया और "मुशिक" क्षत्रियो की राजधानी पर अधिकार कर लिया । बारह वर्षो तक प्रतिवर्ष वह अपने क्षात्र धर्म का पराक्रम प्रकट करते रहे । "राष्ट्रीय" और "भोजिक" क्षत्रियों को अधीन किया । दक्षिण भारत के "पाण्ड्य" राजाओ ने स्वय 'भेंट' भेजकर महाराज खारवेल से मैत्री-सम्बध स्थापित किये । मौर्य-राज्य सहारक "पुष्यमित्र" पर भी आक्रमण किया और कुछ समय पश्चात् पुन: मगध पर आक्रमण करके पुष्यमित्र "बृहस्पतिमित्र" को अपने सन्मुख नतमस्तक होने पर बाध्य किया । मगध राज्य से विपुल धन-वैभव प्राप्त करने के पश्चात् "कलिग जिन" की अमूल्य मूर्ति जिसे पूर्व वर्ती नद वश के राजा विजय-पुरस्कार में मगध ले गये थे, खारवेल उसे वापिस कलिग ले आया । कलिग की प्रजा इस महान् विजय-पुरस्कार की पुन. वापिसी पर हर्षोल्लास में सम्राट् खारवेल की जय-जयकार करने लगी ।

खारवेल की बलशाली और विजयी सेनाओं के आगे "दिमेत्र" (विदेशी यूनानी राजा) न टिक सका । उसने मथुरा, पाचाल और साकेत पर अधिकार जमा रखा था । उसे बलात् पीछे हटना पडा । इस प्रकार खारवेल ने विदेशी जुए से भारत को आजाद कराया ।

प्रतिवर्ष अपनी विजयो के उपलक्ष्य मे खारवेल अपनी राजधानी तोसलि मे वापिस पहुच कर विशिष्ट समारोह तथा धर्मोत्सव मनाता, निर्धनो तथा साधुओ को दान देता, जन-कल्याण के कार्य करता, भवन निर्माण कराता, नहरे खुदवाता और जिन मदिर बनवाता था ।

खारवेल ने सारे भारत पर विजय प्राप्त की थी। "पाण्ड्य देश" के राजा से लेकर "उत्तरापथ" तक तथा "मगध" से लेकर "महाराष्ट्र" तक उनकी विजय-वैजयंती फहराई थी। उस समय खारवेल सार्वभौम सम्राट् हो गये थे। इनका प्रताप एक बार तो चद्रगुप्त और अशोक सा चमका था। उनका सैन्य-संचालन बहुत ऊँचे दर्जे का था।

"सचमुच वह भारतीय नेपोलियन थे।"

खारवेल प्रजा-वत्सल सम्राट् थे। उन्होंने "पौर" और "जनपद" संस्थाओं को स्थापित करके प्रजा की सम्मति के अनुकूल शासन किया था। "पौर" सस्था का सम्बन्ध राजधानी और नगरों के शासन से था। 'जनपद' सस्था ग्रामो का शासन करने के लिये नियुक्त थी।

"इस प्रकार शासन का भार जनता के कंधों पर था।"

यही कारण है कि कलिग से बाहर लड़ाइयो में लगे रहने पर भी खारवेल के शासन-प्रबन्ध में किसी प्रकार की गडबड न होने पाई थी, बल्कि कलिग की समृद्धि में आशातीत वृद्धि हुई थी।

सम्राट् खारवेल का ध्यान धर्म-वृद्धि की ओर विशेषतया गया। उन्होंने "कुमारी पर्वत" पर जैन मुनियो के लिये गुफाएँ और मंदिर बनवाये। यह वही कुमारी पर्वत है जहां पर भगवान् महावीर ने धर्मामृत की वर्षा की थी।

इस पर्वत पर खारवेल ने जैन धर्म का "महा धर्मानुष्ठान" किया। इस सम्मेलन में समस्त भारतवर्ष के जैन यति, ऋषि और पण्डितगण सम्मिलित हुए थे। वहाँ विशेष धर्म-प्रभावना हुई थी। इसी सुवर्ण अवसर पर जैनागम के पुनरुत्थान का उद्योग हुआ था। इस महान् अवसर पर अखिल जैन संघ ने सम्राट् खारवेल को उसकी महान्-विजयो के कारण निम्न पदवियों से विभूषित किया था:—

"खेमराज"

"भिक्खुराज"

"धर्मराज"

उनके भव्य जीवन चरित को पाषाण-शिला पर लिख दिया गया। यह 'शिलालेख' आज भी उडीसा प्रांत के 'खण्डगिरि-उदयगिरि' पर्वत पर की 'हाथी गुफा' मे मौजूद है और जैन इतिहास की अमूल्य निधि है। इस शिलालेख में सन् १७० ई० पू० तक खारवेल की जीवन घटनाओ का उल्लेख है। उस समय खारवेल की आयु ३७ वर्ष रही होगी। उनका स्वर्गवास लगभग १५२ ई० पू० अनुमान किया जाता है।

अध्याय

8 ग

जैन धर्म का विस्तार

[जैन-धर्म के आश्रय में आने वाले राज-वश तथा राज्य]

भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशो मे कुछ ऐसे राज-वश उभरे जिनमे कुछ ऐसे अहिंसा-प्रेमी जिन-भक्त राजा हुए जिन्होने अहिंसा धर्म को प्रतिष्ठित करने में कोर-कसर न छोडी । उन्होने अपनी जीवन-चर्या में भगवान् महावीर के उच्च सिद्धान्तो को स्थान दिया ।

कुछेक राजा और सरदार ऐसे भी हुए जो जैन धर्मानुयायी तो नही बने वरन् उसको आदर की दृष्टि से देखा और जैन मुनियो के विचारो की प्रशसा की तथा उनसे प्रभावित होकर उनको अपने राज्य मे अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान की । कभी कभी इन राजाओ के मत्री तथा सेनापति जैन धर्मी होते थे । ये उच्च कर्मचारी राजा को श्री-वृद्धि एव विजय-लक्ष्मी प्राप्त कराने में सदा तत्पर रहते थे और राज्य मे सुप्रबन्ध कायम करके राजा के विश्वासपात्र बनते थे । इन वशो का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

(i) कलचूरी और कलभ्रवशी राजा

यह मध्यप्रात का सबसे बड़ा राजवश था । ईसवी आठवी-नवमी शताब्दी में इसका प्रबल प्रताप चमक रहा था । इस वश के राजा जैन धर्म के विशेष अनुरागी थे ।

प्रोफेसर रामस्वामी आयगर का कथन है कि इनके वंशज आज भी जैन 'कलार' के नाम से नागपुर के आस पास मौजूद हैं ।

(ii) होयसल वंशी राज्य

इस वंश के अनेक राजा, मत्री और सेनापति जैन धर्मानुयायी थे। 'सुदत्त' मुनि इस वश के राजगुरु थे। पहले यह चालुक्य के माण्डलिक थे, परन्तु सन् १११६ में इन्होने स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया था।

इस वश के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि एक मुनिराज ध्यान कर रहे थे। उनके ऊपर एक शेर झपटा, किसी अन्य पुरुष ने देख लिया उसने दूर से ही आते हुए किसी वीर पुरुष से कहा, "हे सल! इसे मारो" उसने शेर को मार दिया और उसी का वश होय्यसल वंश के नाम से विख्यात हुआ जिसमें अनेक प्रतापी राजा महाराजा हुए।

(iii) गग वश

ईसा की दूसरी शताब्दी में गंग राजाओ ने दक्षिण प्रदेश में अपना राज्य स्थापित किया। ग्यारहवी शताब्दी तक वह विस्तृत भूखण्ड पर शासन करते रहे। यह सब राजा परम जैन थे। 'माधव' इस वश के प्रथम राजा हुए जिन्हे कोग्णी वर्मा भी कहते है। यह जैनाचार्य 'सिहनदि' के शिष्य थे। जैनाचार्य सिहनंदि ने गगराज्य की नीव डालने में बडी सहायता की थी। इस वश के 'अविनीत' नाम के राजा प्रतिपालक जैनाचार्य 'विजय कीर्ति' कहे गये है। सुप्रसिद्ध तत्वार्थसूत्र की 'सर्वार्थसिद्धि' टीका के कर्त्ता आचार्य 'पूज्यपाद देवनंदि' इसी वश के सातवे नरेश 'दुर्विनीत' के राजगुरू थे।

गगनरेश 'मारसिह' के विषय में कहा गया है कि उन्होंने अनेक भारी युद्धो में विजय प्राप्त करके कई दुर्ग जीतकर एवं अनेक जैन मंदिर व स्तम्भ निर्माण कराकर अत मे 'अजितसेन' भट्टारक के समीप बकापुर मे पडित विधि से मरण किया।

मारसिंह के उत्तराधिकारी 'राचमल्ल चतुर्थ' थे जिनके जगत् विख्यात मत्री और सेनापति 'चामुण्डराय' थे। चामुण्डराय ने श्रवण-बेलगोल के 'विंध्यगिरि' पर 'चामुण्डराय बस्ति' निर्माण कराई तथा 'गोम्मटेश्वर' की उस विशाल ५७ फीट ऊ ची प्रस्तर मूर्ति का उद्-घाटन कराया जो प्राचीन भारतीय मूर्तिकला—स्थापत्यकला का एक गौरवशाली प्रतीक है।

(iv) राष्ट्रकूट राजवश

ईसा की सातवी शताब्दी से दक्षिण भारत से जिस राजवंश का बल व राज्यविस्तार बढा, उस राष्ट्रकूट वश से तो जैन धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इन राजाओ में अमोघवर्ष' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह जैनाचार्य 'जिनसेन के शिष्य थे। अमोघवर्ष एक विद्वान् राजा थे। इन्होने 'प्रश्नोत्तररत्नमालिका' ग्रंथ का निर्माण किया। अग, बंग मगध, मालवा, चित्रकूट आदि देशों के राजा अमोघवर्ष की सेवा मे रहते थे। गुजरात सहित दक्षिण प्रदेश पर इनका शासन रहा था। अतिम समय मे राज-पाट त्याग कर अमोघ-वर्ष जैन मुनि बन गये थे।

इनके उत्तराधिकारी 'कृष्ण द्वितीय' के काल में 'गुणभद्राचार्य' ने 'उत्तार पुराण' को पूरा किया, 'इन्द्रनदि' ने 'ज्वाला-मालिनी-कल्प' की रचना की, 'सोमदेव' ने 'यशस्तिलक चम्पू' नामक काव्य रचा तथा 'पुष्पदंत' ने अपनी विशाल श्रेष्ठ 'अपभ्रश' रचनाएं प्रस्तुत की। कृष्ण द्वितीय ने कन्नड़ के सुप्रसिद्ध जैन कवि 'कौन्न' को 'उभय-भाषा-चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया।

अमोघवर्ष के पुत्र 'अकालवर्ष' और उसके वंशज जैन धर्म के दृढ़ अनुयायी थे। उनमें से 'इन्द्र' नरेश ने मुनिदीक्षा अगीकार की थी।

वाड़ा में मूलवस्तिका नामक जैन मदिर बनवाया जो अब भी विद्यमान है।

चालुक्य नरेश भीम प्रथम द्वारा जैनधर्म का विशेष प्रसार हुआ। उसके मत्रीविमल शाह ने आबू पर्वत पर आदिनाथ भगवान् (ऋषभदेव) का वह जैन मदिर बनवाया जिसमे भारतीय स्थापत्य कला का उत्कृष्ट दर्शन हुआ है। जिसकी सूक्ष्म चित्रकारी. बनावट की चतुराई तथा सु दरता जगत् विख्यात मानी गई है। यह आलीशान मदिर सन् 1013 मे सात वर्ष के भीतर बन कर तैयार हुआ। विमलशाह ने तेरह सुलतानो के छत्रो का अपहरण किया था और चद्रावती नगरी की नीव डाली थी। सच तो यह है:—

'कि उसी काल में महमूद गज़नवी द्वारा विध्वन्स किये गये सोमनाथ मदिर का यह प्रत्युत्तर था।'

जैन मत्री विमलशाह ने यह लोकविख्यात कार्य सम्पन्न करके भारतीय स्थापत्य कला, भारतीय भवित एव भारतीय शक्ति का स्वच्छ अहिंसक रूप उपस्थित किया था जो निर्भयता और शूरवीरता से परिपूर्ण था।

चालुक्य नरेश "सिद्धराज" और उसके उत्तराधिकारी "कुमार पाल" के समय मे जैन धर्म का और भी अधिक बल बढ़ा। कलिकाल सर्वज्ञ, प्रसिद्ध जैनाचार्य "हेमचद्र" के उपदेश से राजा कुमार पाल ने स्वय खुलकर जैन धर्म धारण किया और गुजरात की जैन सस्थाओ को खूब समृद्ध बनाया जिसके फलस्वरूप गुजरात प्रदेश सदा के लिये धर्मानुयायियो की सख्या तथा सस्थाओ की समृद्धि दृष्टि से ',जैन धर्म का एक सुदृढ़ केन्द्र बन गया।

वर्तमान युग के महापुरुष महात्मा गाँधी जी पर अहिंसा का जो प्रभाव पड़ा उसका गुजरात के मूलकारण श्री मद् रायचन्द्र भाई थे।

गांधी जी ने विलायत जाते समय मांस नहीं खाना, शराब नहीं पीना और किसी की स्त्री को बुरी दृष्टि से नही देखना तीन प्रतिज्ञायें जैन साधु बेचर स्वामी से ली और उनका जन्म भर पालन किया। बिलायत से लौटने पर वे श्री रायचन्द्र भाई के सम्पर्क में आए और उनके शतावधानी गुण के कारण अत्यधिक प्रभावित हुए। अफ्रीका में जब एक अग्रेज उन्हे ईसाई बनाने का असफल प्रयत्न करने लगा तो उन्होने 27 प्रश्न रायचन्द्र भाई से किए जिनका उत्तर पा वे सन्तुष्ट हुए और उन्हे हिन्दूधर्म में सभी बाते मिल गई जो वे चाहते थे। उनके जीवन पर तीन व्यक्तियों की छाप पडी है—टालस्टाय से पत्रव्यवहार द्वारा, रस्किन की एक पुस्तक जिसका उन्होंने सर्वोदय नाम रक्खा और रायचन्द्र भाई के साथ सम्पर्क में आकर। इसलिए उनके मन में उनके प्रति बहुत आदर था।

गांधी जी ने अहिंसा के द्वारा ही देश को स्वतन्त्र बनाया। यह महान् कार्य किसी धार्मिक कट्टरता के बल पर नही किन्तु नाना धर्मों के प्रति "सद्भाव व सामजस्य" बुद्धि द्वारा ही किया गया था।

यही प्रणाली जैन धर्म का प्राण रही है।

धर्म की अविच्छिन्न परम्परा एव उसके अनुयायियों की समृद्धि के फलस्वरूप ई० सन् 1230 में सेठ "तेजपाल" ने "आबू पर्वत" पर उक्त आदिनाथ मदिर के समीप ही 'भगवान् नेमिनाथ का मन्दिर' बन्वाया जो अपनी शिल्प कला मे केवल उस मन्दिर के ही तुलनीय है।

12वी व 13वी शताब्दी में और भी अनेक जैन मन्दिरो का आबू पर्वत पर निर्माण हुआ जिस कारण से उस स्थान का नाम 'देलवाडा' (दिलवाडा) अर्थात् देवों का नगर पड गया। इसी प्रकार

गिरनार और शत्रुंजय तीर्थ क्षेत्रों में भी विपुल धन राशि व्यय करके जैन शूरवीर भक्तों ने विचित्र मन्दिरों का निर्माण कराया।

(4) विजय नगर साम्राज्यः—

मुसलमानी आक्रांताओं के विरोध स्वरूप 'संगम' सरदार के पाँच पुत्रों ने सन् 1336 ई० में तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर को बसाया। सन् 1463 में 'हरिराय' का राज्य-अभिषेक किया गया। शक्ति संचय कर विजयनगर एक शक्तिशाली राज्य बन गया। 'कृष्णदेव राय' (1509-30) सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतापी एवं शक्तिशाली नरेश था। इस वंश के अन्य राजा भी सब धर्मों के प्रति अत्यन्त सहिष्णु थे।

इस वंश का 'देवराय द्वितीय' जैन धर्म का उपासक था। उसके राज्य में आचार्य 'नेमिचंद' ने शास्त्रार्थ में अन्य विद्वानों पर विजय पाई थी।

सन् 1564 में 'तलीकोट' के युद्ध में दक्षिण के पांचों 'बहमनी सुल्तानो' ने विजयनगर राज्य का विध्वंस कर दिया।

———•———

अध्याय

9

जैनधर्म का प्रभाव क्षेत्र

भगवान् महावीर के युग में जैन धर्म भारत के विभिन्न भागों में फैला। इसका जिक्र पहले किया जा चुका है। सम्राट् अशोक के पुत्र सम्राट् सम्प्रति ने जैन धर्म का सन्देश भारत के बाहर भी पहुँचाया। उस समय जैन मुनियो का विचरण-क्षेत्र भी विस्तृत था।

(i) श्री "विश्वम्भर नाथ पाण्डे" ने अहिंसक परम्परा की चर्चा करते हुए लिखा है:—

"ईसा की पहली शताब्दी मे और उसके पीछे हजार वर्ष तक जैन धर्म "मध्य-पूर्व" (Middle East) के देशों में किसी न किसी रूप में "यहूदी धर्म" "ईसाई धर्म" और "इस्लाम धर्म" को प्रभावित करता रहा है"

(ii) प्रसिद्ध जर्मन इतिहास-लेखक "वान क्रेमर" के अनुसार मध्य-पूर्व में प्रचलित "समानिया" सम्प्रदाय "श्रमण" शब्द का अपभ्रंश है।

(iii) इतिहास लेखक "जी० एफ० मूर" लिखता है:—

"हजरत ईसा के जन्म की शताब्दी से पूर्व 'ईराक', 'श्याम' और 'फिलस्तीन' में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैंकड़ों की संख्या में फैले हुए थे।"

(iv) "सियाहत-नामा-ए-नासिर" का लेखक लिखता है कि इस्लाम धर्म के "कलन्दरी' तबके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा

था। कलन्दर चार नियमो का पालन करते थे — 1. 'साधुता 2. शुद्धता 3. सत्यता और 4. दरिद्रता'। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास करते थे। जैन धर्म का प्रसार अहिंसा, शान्ति, मैत्री और सयम का प्रसार था। इसलिये उस युग को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग (Golden Age) कहा जाता है''।

(v) पुरातत्व विद्वान् पी० सी० राय चौधरी के अनुसार:—

''यह धर्म (जैन धर्म) धीरे धीरे फैला, जिस प्रकार ईसाई धर्म का प्रचार यूरोप में धीरे धीरे हुआ। श्रेणिक, कुणिक, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, खारवेल तथा अन्य राजाओं ने जैन धर्म को अपनाया। वे शताब्द भारत के हिन्दू-शासन के वैभवपूर्ण युग थे, जिन युगो मे जैन-धर्म सा महान् धर्म प्रसारित हुआ।''

(vi) भगवान् महावीर ने समाज के जो नैतिक मूल्य स्थिर किये, उनमें दो बाते सामाजिक और नैतिक दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण थी:—

(अ) अनाक्रमण — सकल्पी हिंसा का त्याग

(आ) इच्छा परिमाण — परिग्रह का समीकरण

'यह लोकतत्र या समाजवाद का प्रधान सूत्र है। वाराणसी संस्कृत विद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री आदित्य नाथ झा ने इस तथ्य को इन शब्दो में व्यक्त किया है:—

'भारतीय जीवन में प्रजा और चरित्र का समन्वय जैनो और बौद्धो की विशेष देन है। जैन दर्शन के अनुसार सत्यमार्ग परम्परा का अधानुसरण नही है, प्रत्युत तर्क और उपपत्तियो द्वारा सम्मत तथा बौद्धिक रूप से सतुलित दृष्टिकोण ही सत्य मार्ग है। इस दृष्टकोण को

प्राप्ति तभी सम्भव है जब मिथ्या विश्वास पूर्णतः दूर हो जाये। इस बौद्धिक आधार-शिला पर ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के बल से सम्यक् चरित्र को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।"

जैन धर्म का आचार शास्त्र भी जनतन्त्रवादी भावनाओ से अनुप्राणित है। जन्मतः सभी व्यक्ति समान हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और रुचि के अनुसार गृहस्थ या मुनि हो सकता है।

अपरिग्रह सम्बंधी जैन धारणा भी विशेषतः उल्लेखनीय है। आज इस पर अधिकाधिक बल देने की तथा इसे आचरण में लाने की आवश्यकता है, जैसा कि प्राचीन काल के जैन विचारकों ने किया था। 'परिमित परिग्रह' — उनका आदर्श वाक्य था। 'सम्भवतः भारतीय आकाश में समाजवादी समाज के विचारो का यह प्रथम उद्घोष था'

(vii) प्रत्येक आत्मा में अनत शक्ति के विकास की क्षमता, आत्मिक समानता, क्षमा, मैत्री, विचारो का अनाग्रह आदि के बीज जैन धर्म ने बोये थे। महात्मा गाधी का निमित्त पा वे केवल भारत के ही नही, विश्व की राजनीति के क्षेत्र में भी पल्लवित हो रहे हैं।

(viii) जैन धर्म पहले बिहार प्रात मे पल्लवित हुआ। कालक्रम से वह बगाल, उडीसा, उत्तर-दक्षिण भारत, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रांत और राजपूताना में फैला। विक्रम की सहस्राब्दी के पश्चात् शैव, लिंगायत, वैष्णव आदि वैदिक सम्प्रदायो के प्रबल विरोध के कारण जैन धर्म का प्रभाव सीमित हो गया। अनुयायियों की अल्प संख्या होने पर भी जैन धर्म का सैद्धातिक प्रभाव भारतीय चेतना पर व्याप्त रहा। बीच-बीच में प्रभावशाली जैनाचार्य उसे उद्बुद्ध करते रहे। विक्रम की बारहवी शताब्दी मे गुजरात का वातावरण जैन धर्म से प्रभावित था।

(ix) गुर्जर नरेश 'जयसिंह' और 'कुमार पाल' ने जैन धर्म को बहुत ही प्रश्रय दिया। कुमार पाल का जीवन जैन-आचार का प्रतीक बन गया।

(x) सम्राट् "अकबर" "श्री हीर विजय सूरि" से प्रभावित थे। इस सम्बंध में अमरीकी दार्शनिक "बिल ड्यूरेण्ट" ने लिखा है:—

"अक़बर ने जैनों के कहने पर शिकार छोड़ दिया था और नियत तिथियों पर हत्याए रोक दी थी। जैन धर्म के प्रभाव से ही अकबर ने अपने द्वारा प्रचारित 'दीन-ए-इलाही' नामक सम्प्रदाय में 'माँस-भक्षण के निषेध का नियम' रखा था"

(xi) जैन मत्री, दण्डनायक और अधिकारियों के जीवन वृत्त बहुत ही विस्तृत हैं। वे विधर्मी राजाओं के लिये भी विश्वासपात्र रहे हैं। उनकी प्रामाणिकता और कत्तर्व्य-निष्ठा की व्यापक प्रतिष्ठा थी।

राष्ट्रीय भावना से समन्वित हमेशा जैन धर्मानुयायी रहे आशा-शाह ने महाराणा प्रताप के पिता उदयसिह की रक्षा का भार लिया और युवराज होने पर चित्तौड़ की गद्दी पर बिठलाया। चित्तौड़, उदयपुर के परास्त हो जाने पर महाराणा प्रताप जब सिन्ध को जाने लगे और मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम ज्यों ही किया उसी समय भामाशाह आए और राणा के चरणों में इतना धन लाकर पटक दिया जिससे 24000 सैनिक बारह वर्ष तक युद्ध लड़ सकते थे।

राणा ने कहा भामा इतना धन पाने पर तुम्हें लालच नही आया? भामा:-महाराज यह सभी सम्पत्ति देश की है, आप जंगल की खाक छाने और मै ऐश्वर्य भोगू !

राणा ने मिट्टी उठाई और भामा के मस्तक पर तिलक कर दिया और कहा जब तक मेरे वश में कोई राजा रहेगा और तेरे वश मे पुत्र रहेगा वह इस राज्य का मत्री और सेनापति बनेगा।

जैनत्व का अकन तप त्याग आदि चारित्रिक मूल्यों से ही हो सकता है।

अध्याय

10

जैन धर्म का विकास—कारण

भगवान् महावीर की सच्ची और सादा तालीम तथा उनके शुद्ध आचरण का भारतीय जनता के समस्त वर्गों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। समाज के पिछड़े हुए पददलित तथा उपेक्षित वर्ग को वीर-वाणी' सुखद और प्रिय लगी। उस समय पांव-की-जूती समझी जाने वाली स्त्री-समाज को पुरुष समाज के समकक्ष खड़ करके 'समान अधिकारों' की जो बात महावीर ने कही वही सामाजिक क्रांति का नाद था। धर्म के नाम पर पशु-पक्षियों की बलि, जीव-हिंसा, आडम्बरवाद, जाति-अभिमान, असमानता, असहिष्णुता—ये भारतीय समाज के 'कलंक' थे। महावीर ने जब यह सब कलंक धो डाले तो उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। 'अहिंसा धर्म' की दुंदुभि चहुं ओर बज उठी। जैन धर्म जन-जन का धर्म बन गया। जैन धर्म का विकास निम्न कारणों से हुआ:—

(i) मध्य मार्ग:—

जैन धर्म प्रत्येक आदमी को उसकी शक्ति और भावना के अनुसार धर्माचरण करने का उपदेश देता है। 'मुनि' और 'गृहस्थ' का अलग अलग विधान बनाकर तथा 'देश' 'काल' 'भाव के अनुसार आचरण करने की छूट देकर सतुलित समाज की बुनियाद डाली।

(ii) समन्वय:—

जैन धर्म ने भिन्न-भिन्न विचारों का सापेक्ष दृष्टि से समन्वय किया। भिन्नता में एकता (Unity in Diversity) को समाज में

प्रतिष्ठित कर आपसी झगड़ों को दूर किया। समाज में घृणा का स्थान सहिष्णुता और पारस्परिक प्रेम ने ले लिया जो शक्ति का परिचायिक बना।

(iii) **समानता:—**

जैन धर्म ने जाति-भेद, रंग-भेद, लिङ्-भेद, भाषा-भेद को दूर किया। इसलिये साधारण जनता ने हृदय से इस धर्म का स्वागत किया।

(iv) **परिवर्तन की क्षमता:—**

जैन चिंतकों ने सामाजिक परम्परा को 'शाश्वत' का रूप नहीं दिया। इसीलिये, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, समाज में 'देश' और 'काल' के अनुसार परिवर्तन का अवकाश रहा। यह जनता के आकर्षण का सबल हेतु था।

(v) **सैद्धांतिक सहिष्णुता:—**

दूसरे धर्मों के सिद्धांतों को सहने की क्षमता के कारण जैन धर्म दूसरों की सहानुभूति अर्जित करता रहा।

(vi) **जैन भाषा:—**

जैन तीर्थंकरों और आचार्यों ने अपना उपदेश रोजमर्रा बोली जाने वाली जन-साधारण की भाषा में दिया। उन्होंने देव-भाषा (संस्कृत) का मोह नही किया। इसी लिये जैनों के धर्म शास्त्र (जैनागम) अधिकतर 'मागधी' अर्द्ध मागधी', 'प्राकृत', शौरसेनी', 'महाराष्ट्री' तथा 'अपभ्रंश' भाषाओ में मिलते है।

(vii) **अहिंसा का व्यवहार में प्रयोग:—**

इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पशु-हिंसा यज्ञों में नितात

र्जित हो गई। दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्रदेश हरियाणा, पश्चिमी यू० पी०, मध्यप्रदेश, राजपूताना, महाराष्ट्र तथा गुजरात के अधिकांश सभी जातियों के लोग अहिंसा की प्रतिष्ठा करते हैं।

(vii) प्रामाणिकता:—

जैन गृहस्थ अहिंसा पालन के साथ कर्त्तव्य के प्रति बहुत जागरूक थे। वे देश के विकास और रक्षा के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर देते थे जैसे कि निकट अतीत मे राजस्थान में महाराणा प्रताप के मन्त्री 'भामा शाह' जैन ने आपत्कालीन स्थिति में अपनी समस्त सम्पत्ति देश-रक्षा हित महाराणा को सौप दी थी।

दक्षिणी भारत मे जैन समाज ने शिक्षा (ज्ञान दान), जीविका (अन्नदान), चिकित्सा (औषध दान), अहिंसा (अभयदान) के माध्यम से जैन धर्म को 'जैन धर्म का वास्तविक रूप' दे दिया था।

(ix) सशक्त और कुशल आचार्यों का नेतृत्व:—

नीतिवान्, आचारवान्, प्रज्ञावान् तथा शक्तिवान् आचार्यो ने देश, समाज और साहित्य की जो सेवा की वह बेजोड़ है। उनकी महान् कृतियो का दिग्दर्शन आगे कराया जायेगा।

(x) जैन धर्म राज-धर्म:—

चद्रगुप्त मौर्य, सम्प्रति, खारवेल, अमोघवर्ष, कुमारपाल आदि राजा तथा चामुण्डराय जैसे सेनापतियो व विमल शाह, वस्तुपाल, तेजपाल, भामाशाह आदि जैसे दक्ष मंत्रियो, सेठ-साहूकारो तथा अन्य उच्चाधिकारियों द्वारा जैन धर्म की मान्यता से जैन धर्म के विकास में विशेष योगदान मिला।

——०——

अध्याय

11 (क) जैन धर्म का ह्रास—कारण

विश्व की प्रत्येक प्रवृत्ति को, प्रत्येक विचारधारा को उतार-चढ़ाव से दो चार होना पड़ता है। कोई भी प्रवृत्ति सदा के लिये उन्नति या अवनति के बिंदु पर अवस्थित नहीं रह सकती।

विक्रम की नवी-दशमी शताब्दी में स्थितियों में परिवर्तन आने लगा। फलतः जैन धर्म के विकास मार्ग में अनेक बाधाएं आ उपस्थित हुयीं, जिसके कारण वह अवनति की ओर अग्रसर हुआ। नीचे ह्रास के कुछेक कारणों का उल्लेख किया जाता है:—

(i) आंतरिक पवित्रता और शक्ति की कमी व बाह्यकर्म-काण्डों की प्रचुरता:—

तालाब मे भारी पत्थर फेंकने से सशक्त जलतरंगे उठती हैं परन्तु किनारों के पास आते आते वे कमजोर पड़ जाती हैं। इसी प्रकार समय बीतने पर जैन धर्मानुयायी धर्माचरण में शिथिल होते गये। परिणामतः धर्म का स्थान दिखावे ने ले लिया। बाहरी कर्म-काण्ड को ही धर्म मान लिया गया।

(ii) व्यक्तिवादी मनोवृत्ति:—

दूसरों की हानि से, विपत्ति से मुझे क्या वास्ता ? मैं दूसरों के लिये क्यों कर्म बांधूं। 'पराई तुझे क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू'। इस प्रकार के 'एकान्तिक निवृत्तिवादी चिन्तन' ने धर्म के सामाजिक रूप को बड़ी हानि पहुँचाई। कुछ लोगो का विचार है कि वस्तुतः इस 'व्यक्तिवादी मनोवृत्ति' की जड़ हमारे उन सैद्धांतिक विचारो में पाई

जाती है जिसमें यह दर्शाया गया है कि हमारा उद्देश्य 'आत्म-मुक्ति, निजीमुक्ति या व्यक्तिगत मुक्ति' है। इन विचारों से हम समाज से अलग जा पड़ते हैं। हम सामाजिक सगठन या सामाजिक शक्ति का ह्रास होते देखकर अधिक चिन्तित नहीं होते क्योंकि हमारे लाभ-हानि का रूप सामाजिक न होकर 'व्यक्तिगत' हो जाता है।

(iii) **राज्य-आश्रय से वंचित:—**

राज्य-आश्रय हटने से जैन धर्म को बड़ी हानि पहुँची। इससे जैनाचार्यों के कार्य-क्रम में बड़ा व्यवधान पड़ा। राज्याश्रय न रहने से राज-शक्ति विरोधी पक्ष के इशारे पर नाचने लगी और जैन धर्म को हानि पहुचाने पर उतर आई। अनेक कठिनाइयो का वातावरण उत्पन्न हो गया।

(iv) **असफल नेतृत्व: —**

जैन धर्म में ऐसे नेतृत्व का अभाव हो गया जो राजनीति और धर्मनीति को साथ साथ लेकर चल सकता। धर्मनीति के मुकाबले में राजनीति की उपेक्षा की जाने लगी। एक आचार्य का कथन है कि धर्म 'पंगु' है, यह किसी के सहारे ही चल सकता है। धनी और सत्ताधारी वर्ग इसके प्रचार साधनो को जुटाते है और इसकी गति को तीव्र करते है।

धर्म प्रचार में जो शिथिलता आई उसका प्रमुख कारण साधु-संस्था का अभाव, धन के प्रति तीव्र मोह, और मानसिक स्वार्थवृत्ति थी। जिसने प्राचीन धारा को दूसरी ओर मोड़ दिया। धन सम्पत्ति का उपयोग जिन कार्यो में खर्च होना चाहिए था वहां न होकर अन्य कम उपयोगी कार्यो मे व्यय हुआ। फल स्वरूप जागृति का प्रवाह रुक गया।

(v) अन्य धर्मों का बढ़ता हुआ प्रभाव:—

जैनिज्म् (Jainism) अन्य धर्मों के बढ़ते हुए प्रभाव को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा और उनके विकास साधनों को अपनाने की कोशिश नहीं की, प्रत्युत अपने आप को 'एकाततः आध्यात्मिक' बनाये रखने की प्रवृत्ति उत्पन्न करली। इस प्रकार व्यर्थ मे ही पृथक्त्व (I solation) से अपने आप को दण्डित कर लिया।

(vi) जैन धर्म का विभाजन:—

जैन धर्म सदा के लिये दिगम्बर, श्वेताम्बर दो बड़े सम्प्रदायों में बट गया। इन दोनों सम्प्रदायों ने आपसी विरोध की पक्की दीवारें खड़ी कर ली। समय बीतने पर ये दो सम्प्रदाय आगे कई छोटे छोटे भागों में बट गए। साधारण नियमों पर ऊहा पोह होने लगी। इस प्रकार ये शाखाएं और उपशाखाएं एक दूसरे से द्वेष और घृणा करते हुए समय बिताने लगी और अपनी शक्ति कमजोर करने लगी। इससे जैन धर्म के 'केन्द्रीय संगठन' को भारी धक्का लगा।

(vii) उत्तर गुणों को प्राथमिकता:—

उत्तरकालीन आचार्यों ने पिछली दो तीन शताब्दियों से गृहस्थों को जो उपदेश दिये उनमे मूलगुणों के स्थान पर उत्तरगुणों का अत्यधिक प्रचार किया गया-जैसे हरी शाक सब्जी का त्याग आदि।

(viii) जैन सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न धर्मशास्त्र:—

जैन दिगम्बर सम्प्रदाय का मत है कि 'आगम' नष्ट हो चुके हैं। वे षट्खण्डागम' को मानते हैं जिसका आचार्य पुष्पदंत और आचार्य भूतबलि ने संकलन किया था। जैन श्वेताम्बर 45 आगमो को मानते हैं। जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी 32 आगम प्रमाण मानते हैं। ये सभी मतभेद धर्माचार्यों और पण्डितों के भिन्न भिन्न विचारों के

कारण से निकले हैं। इस कारण से दिगम्बर और श्वेताम्बर 'आस्था' में एक दूसरे से दूर दिखने लगे हैं।

(1X) अत्यंत विस्तृत आचार शास्त्रः—

नियमानुनियम विस्तार इतना अधिक हो गया है कि यह जानना कठिन हो गया है कि कहाँ से आरम्भ-करे और कहाँ समाप्त करे। गाना, बजाना, नाचना, मकान बनाना, नहाना-धोना, फल फूल खाना व तोड़ना, भ्रमण, व्यायाम आदि जीव-हिंसा में शुमार होने लगे तथा आत्म-विकृति का रूप माने जाने लगे। प्रत्येक क्रिया-कलाप में जीव-हिंसा का प्रश्न खड़ा कर देने से जनसाधारण तंग आ गए।

(X) दब्बू श्रावकवर्गः—

एक समय ऐसा आया कि शास्त्र पठनपाठन केवल जैन मुनियो का कार्य बन कर रह गया। जैन 'गृहस्थ' (श्रावक) केवल तहत वचन महाराज (मुनि महाराज जो कथन कहते हैं वह सर्वथा सत्य है) कहने वाला एक ज्ञानहीन तथा शक्तिहीन वर्ग बन कर रह गया। इन श्रावको का मुख्य कर्त्तव्य अपने 'गच्छ' (टोले) के गुरु या आचार्य के बताए हुए मार्ग पर चलना था और अपनी परम्परा के अतिरिक्त जैनो की शेष आचार्य परम्पराओ को गलत मानना और इशारा पाते ही उनका विरोध भी करना था।

अगर खोज-बीन की जाये तो कहना पडेगा कि वैज्ञानिक युग से पूर्व (आज से सौ डेढ सौ वर्ष पहले) श्रावक 'भेड बकरी' के समान था जिसके हृदय और पीठ पर अपने गच्छ के आचार्य की छाप लगी हुई थी, जिससे बलात् उसे अपने साम्प्रदायिक पिजडे की सीमा के अन्दर ही रहना पडता था। इस प्रकार 'पृथक्करण नीति' से जैन धर्म को असीम क्षति पहुची।

स्याद्वाद अथवा अनेकांतवाद ग्रंथों में लिखा रह गया और व्यवहार मे उसका स्थान 'आग्रहवाद' ने ले लिया।

(xi) क्षात्र-तेज से वणिक-वृत्ति की ओर:—

भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् क्षात्र-तेज और ब्रह्म-तेज का सुन्दर सम्मिश्रण उपस्थित किया था। क्षात्र वृत्ति एक दम निःस्वार्थ तथा दूसरों को सहायता व संरक्षण देने वाली लोक-कल्याण वृत्ति है। जब तक जैन धर्म को क्षात्र तेज व ब्रह्म तेज का आश्रय रहा वह विकासोन्मुख ही रहा, प्रगतिशील ही रहा। परन्तु जब क्षात्र तेज नष्ट हो गया और ब्रह्मतेज कमजोर पड़ने लगा तो असंतुलन पैदा हुआ। परिणामतः अहिंसा ने कायरता का रूप ले लिया। सुख-शान्ति-वैभव प्राप्ति की इच्छा प्रबल हुई। आत्म-रक्षा के लिए भी युद्ध हिंसा-परक हो गया। क्षात्रतेज नष्ट हुआ, ब्रह्मतेज क्षीण हुआ और कृषि में हिंसा नजर आने लगी। केवल 'व्यापार में या सूदखोरी में हमें अहिंसा नजर आई।

आज सारे का सारा जैन समाज अधिकांश व्यापारी वर्ग से सम्बन्ध रखता है। क्षात्र तेज और ब्रह्मतेज में हम 'शून्य' के बराबर हैं। हमारी क्रय-शक्ति व्यापार के कारण जरूर बढ़ी है परन्तु किन किन साधनों से ? ज्ञान, शक्ति और आचार की किसी भी भूमिका पर हमारा नाम निशान नजर नही आता।

परिणाम यह हुआ है कि थपेड़े खाते खाते 50 करोड़ की संख्या में से अब हम केवल पचास लाख ही बचे होंगे।

इसी संदर्भ में एक संस्मरण पेश कर रहा हूं। जरा विचार से पढ़ियेगा—

'बात सन् 1954 की है। पण्डित जवाहर लाल नेहरू उस समय

भारत के प्रधान मंत्री थे। सन् 1954 से पूर्व भी भारत के समस्त जैनियों ने प्रतिवर्ष उनकी सेवा में कागजी रेजोल्यूशन भेजकर तथा प्रतिनिधि मण्डल उनकी सेवा में उपस्थित करके, हजार अनुनय-विनय की थी कि भगवान् महावीर स्वामी, जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर, जिन्होंने भारत ही नही वरन् समस्त विश्व को 'सत्य और अहिंसा' का प्रशस्त मार्ग दिखाया, उनके जन्म दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भारतवर्ष में गजेटिड (राजपत्रित) छुट्टी घोषित की जाये।

इसमें सदेह नहीं कि पण्डित नेहरू जैन धर्म व जैन समाज का आदर करते थे परन्तु उन्होंने आजन्म जैनियों के इस छुट्टी के प्रस्ताव को कभी कोई महत्व नहीं दिया और न ही भगवान् महावीर के जन्मदिन की छुट्टी कभी घोषित की।

दिल्ली जैन समाज ने गांधी ग्राऊन्ड में तथा नई दिल्ली में कई बार 'महावीर जयन्ती' के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रधान मंत्री पण्डित नेहरू जी को आमंत्रित किया, उनका फूल मालाओं से स्वागत किया और बड़े आदरपूर्वक अपनी पुरानी विनती को दोहराया, परन्तु तूती की आवाज नक्कारखाने में कौन सुनता है ?

पुनः, जब उपर्युक्त बहुचर्चित प्रस्ताव लेकर समग्र भारत के जैनियो का प्रतिनिधिमण्डल श्री नेहरू को उनके निवास स्थान पर मिला तो उस समय पण्डित जी ने प्रसन्न मुद्रा मे उपस्थित विदेशी राजनीतिज्ञों को सम्बोधित करते हुए कहाः—

'कि भारतवर्ष में यही (जैन समाज) एक ऐसा अहिंसक वर्ग है जिससे भारत सरकार को कोई भय या खतरा नही है'

यह शब्द जैन समाज की कमजोरी प्रदर्शित करते हैं या उसकी

प्रशंसा, इसका निर्णय हम आप पर ही छोड़ते हैं। परन्तु इतनी ललो-चप्पो के बावजूद भी 'महावीर जयन्ती की छुट्टी मजूर नही की गई।

इसके विपरीत 'बुद्ध पूर्णिमा' की छुट्टी बिना मांगे सारे भारतवर्ष में घोषित की गई और महात्मा बुद्ध का 25 वी शताब्दी समारोह बड़े सजधज से सरकारी स्तर पर मनाया गया जिसमें भारत सरकार का करोड़ो रुपया खर्च हुआ।

सुभाष बाबू ने एक बार कहा था—तुम खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा'। यह सच है कि बिना बलिदान दिये, बिना त्याग किये, केवल कागजी घोडे दौड़ा कर, सफलता नही मिला करती। वस्तुत: आत्म-दर्शी होने की बजाय हमने आत्मघात ही किया है।

समस्या गम्भीर है और विचारणीय है।

———•——

अध्याय

11(ख) जैन धर्म—ह्रास की रोक थाम कैसे हो

राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय समाज को चेतावनी-रूप एक स्थान पर कहा था:—

'हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होगे अभी ?
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याए सभी'।

यदि रोग का निदान समझ मे आ जाये तो उसका इलाज सहज ही हो सकता है। यदि उन्हे दूर कर दिया जाये तो पुन: विकास मार्ग की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। जैन धर्म के ह्रास को रोकने के लिये कुछ उपाय नीचे कहे जाते है.—

(1) भिन्नता में एकता:—

शताब्द और सहस्राब्द व्यतीत हो गये भिन्नता का अभ्यास करते हुए। अब उसी भिन्नता में एकता के दिग्दर्शन करने का प्रयास होना चाहिए। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी आदि नि.सकोच अपनी मान्यताए कायम रखे परन्तु विवादास्पद प्रश्नो के सम्बन्ध मे दुराग्रह करना छोड़ दे जैसे:—

(अ) मुक्ति अचेलक को या सचेलक को ?
(आ) स्त्री को मोक्ष है या नही ?
(इ) मूर्ति पूजा ग्राह्य है या वर्जित ?
(ई) गेहू के दाने में बीज है या नही ?
(उ) मुखवस्त्रिका मुख पर डोरे के साथ धारण की जाय या

हाथ में रखी जाये ?

(ऊ) महावीर का विवाह-सम्बन्ध हुआ था या नही इत्यादि।

जिस सम्प्रदाय की जो आस्था है वह उसका पूर्णतया पालन करे, परन्तु खण्डन-मण्डन अथवा वाद-विवाद के कुचक्र में न पडे। आग्रह-वाद का त्याग किया जाये। स्याद्वाद तथा अनेकांतवाद को प्रतिष्ठित किया जाये और शुरूआत अपने से ही की जाये। "खण्डन नीति" को निरुत्साहित किया जाये और 'एकता' पर बल दिया जाये।

'एकता की आवाज' बुलंद करने वालो को जैन समाज विशेष सम्मानित व पुरस्कृत करे। इस उद्देश्य के लिये युवा-पीढ़ी की ओर जनमत तैयार किया जाये।

वर्ष-भर मे 'जैन धर्म की एकता' पर एक-दो स्थानीय, प्रांतीय तथा केन्द्रीय समारोह व्यवस्थित किये जाये।

आकाशवाणी से जैन पुण्य तिथियों पर 'जैन एकता' सम्बन्धी 'वार्ता' प्रसारित की जाये। इस विषय पर शिक्षा सस्थानो में निबन्ध व भाषण प्रतियोगिताए व्यवस्थित की जायें।

(ii) अंतर्जातीय विवाह प्रथा:—

अग्रवाल, ओसवाल, खण्डेलवाल, पल्लीवाल, दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी, तेरापथी आदि अनेक जैन वर्ग आपस मे विवाह-सम्बध स्थापित करें। विचारो की स्वतत्रता में हस्तक्षेप न किया जाये। भगवान् के केवल व्यापक मूल सिद्धान्तों—जैसे अहिंसा आदि—के पालन पर ही बल दिया जाये। इससे विषमता घटेगी, प्रेम बढ़ेगा, एक दूसरे के निकट आने का अवसर मिलेगा और यथार्थ धर्म की उन्नति होगी।

(iii) **जागरूक तथा विवेकशील श्रावकः—**

इस वैज्ञानिक युग में, बदलती दुनिया के साथ कदम मिलाकर चलने वाला श्रावक चाहिये। वैसे भी महावीर ने हमें 'देश, काल, भाव' के अनुकूल परिवर्तन लाने की स्वतंत्रता दे रखी है। पुरानी मान्यताओं को मरी हुई बदरिया के समान गले से चिपकाये रखना कोई बुद्धिमत्ता की बात नही है:—

सदा एक ही रुख नही नाव चलती,
चलो तुम उधर को हवा हो जिधर की।

विवेकशील श्रावक (गृहस्थ) इस बात का ध्यान रखेगा कि कोई उसका पुरखा या सजातीय या मित्र उसे एकता के पथ से विचलित तो नही कर रहा। 'एकता की पतवार' को अब हरगिज़ नही छोडना है और एकता विरोधी प्रवृत्तियो का बहिष्कार करना है।

विवेकशील श्रावक को 'सहिष्णुता' से प्यार करना होगा। दूसरो के दृष्टिकोण को अपने दृष्टिकोण में स्थान देना होगा।

विवेकशील तथा प्रगतिशील श्रावक उस नेतृत्व को स्वीकार नही करेगा जो 'भेद-नीति' का पोषक हो। जागरूक श्रावक अपने धार्मिक नेता तथा राजनीतिक नेता दोनों के समक्ष अपना स्वतत्र दृष्टि-कोण पेश करने में नही हिचकिचायेगा। भगवान् महावीर ने सद्-गृहस्थ श्रावक को 'मुनियों के माता पिता' की संज्ञा दी है, क्योकि मुनि को उत्तम श्रमण धर्म पालन करने के लिये व अपने जीवन निर्वाह के लिये 'श्रावक' पर निर्भर रहना पडता है।

(iv) केन्द्रीय धर्माचार्य-समितिः—

इस समिति मे सभी जैन सम्प्रदायो के महान् आचार्य सम्मिलित

होंगे जो समूचे जैन धर्म में बाधक या सहायक प्रक्रियाओ पर विचार करके जैनों की एकता पर एक सर्वमान्य नीति तैयार करेगे तथा उस पर अपने सघ में आचरण करवाने के लिये कटिबद्ध होगे । यह समिति पत्र-व्यवहार द्वारा भी बहुत कुछ निर्णय ले सकती है।

(v) **केन्द्रीय श्रावक समिति.—**

समस्त भारतवर्ष की या विश्व-भर के जैनो की यह प्रतिनिधि समिति होगी जो समय-समय पर मिल बैठकर जैन धर्म तथा समाज की प्रगति सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करेगी । 'एकता व अहिंसा-धर्म प्रसार इसका लक्ष्य होगा' ।

यह समिति केन्द्रीय आचार्य समिति के साथ सहयोग करेगी और विचारो का आदान-प्रदान करेगी।

(vi) **सच्चाभारतीय नागरिक:—**

सच्चा जैन ही सच्चा नागरिक और सच्चा नागरिक ही सच्चा जैन हो मकता है। हमारी शिक्षा सस्थाए व सस्थान अच्छा नागरिक बनाने मे तत्पर हो । इस प्रकार हमें अजैन भाइयो से पूरा सहयोग मिल सकता है ।

(vii) **जैन बालकों में सर्वतोमुखी विकास·—**

आज का विद्यार्थी कल का जनक है । स्थानीय सँस्थाए तथा उनके मुख्य लोग यदि इस बात मे दिलचस्पी ले और बच्चो का ठीक मार्ग-दर्शन करे तो इन्ही मे से ऊँचे दर्जे के सेनानायक, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, वकील, कलाकार, साहित्यकार, अर्थशास्त्री, व्यवसायी, राजनीतिज्ञ तथा बहुभाषा-भाषी विद्वान् निकल सकते है।

(viii) **स्वाध्याय प्रणाली:—**

छोटी बड़ी उम्र के सभी श्रावको में स्वाध्याय प्रणाली चालू

करने की अत्यन्त आवश्यकता है। जन गृहस्थो को जब अपने धर्म सिद्धान्तो का ही ज्ञान नही है तो उनकी उनमें आस्था स्थिर कैसे रह सकती है ? उनकी स्थिति गली के एक कंकर की है जिसे ठोकर मार कर कोई भी व्यक्ति किसी दिशा में फेक सकता है।

स्वाध्याय प्रणाली को प्रसारित करने के लिये प्रोत्साहन अथवा पुरस्कार आदि का अवलम्बन करना चाहिये।

(ix) विज्ञान में दिलचस्पी·—

इस विषय में हमारे बालको को अधिक से अधिक क्रियाशील होना चाहिये। जैन धर्म वैज्ञानिक ढंग को अपनाता ही है। जैन सिद्धात मे कुछ ऐसे तथ्य भरे पडे है कि यदि उनकी खोज की जाये तो कई चमत्कारिक रहस्य उद्घाटित हो सकते है। 'परमाणु' तथा 'आकाश' के बारे मे तो जैन धर्म ने विशेष उपयोगी विचार दिये है जो आज-कल के वैज्ञानिकों के लिये बडे काम की वस्तु है।

(x) पुन: क्षात्र तेज की प्राप्ति अथवा सेना में प्रवेश:—

हमें अपने क्षात्र तेज को पुनः जागृत करना होगा। जैन वीर सेनापति 'चामुण्ड राय' और 'आभू' की याद ताज़ा करनी होगी। जैन सम्राट् खारवेल की मोर्चाबदियो, सैन्य-संचालन, रण-कौशल, कर्त्तव्यशीलता, प्रजावत्सलता आदि गुणो को अपनाना होगा। प्रत्येक जैन श्रावक को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह धर्मनीति को अपनाते हुए भी राजनीति से अलग नही रह सकता क्योकि देश में शान्ति और समृद्धि होने पर ही धर्म की साधना तथा जीवन में सुख शान्ति सम्भव है। उसके बिना समाज का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता और अन्य जातियो के मुकाबले में वह नि:सहाय, कमज़ोर, अशक्त माना जायेगा। अगर जैन श्रावक यह समझता है कि धन-बल

का तो संचय किया जाये परन्तु क्षात्रबल और राजनीति बल की उपेक्षा की जाये तो यह नितांत अधूरा व्यक्तित्व होगा ।

देश की राजनीति और सैन्य-बल से संन्यास लेकर हम कैसे जीवित रह सकते है ? जो मरना नही जानता वह जीना भी नही जानता । ऐसे व्यवित को जीने कौन देगा ? अगर वह जियेगा भी तो आख-बद-कान-बंद व्यक्ति के समान । भला यह भी कोई जीवन है ?

उठो, खडे हो जाओ । महावीर की 25वी निर्वाण शताब्दी में एक करवट बदलो । अपनी सतानों को अधिक से अधिक संख्या में वायु-सेना, जल-सेना, थल-सेना मे भर्ती कराओ । मृत्यु केवल सैनिक को ही नही दबोचती, अपने समय पर यमराज सभी जीवो को अपने पाश में फासते है ।

2500 वीं महावीर निर्वाण जयन्ती पर आप मोह जाल को फेंकिये और नौजवान बच्चो को मैदान में आने दीजिये । उन्हे महावीर का वीर सैनिक बनने दीजिये, सिह को अपना तेज प्राप्त करने दीजिये । 'सुखे-समाधे' और 'सुख-साता' की चाह के स्थान पर बच्चो को मृत्यु से जूझने की शिक्षा दीजिये । बच्चों की धमनियो में जो नया खून दौड़ रहा है और वह कुछ जोखिम के काम करना चाहता है, इसकी उसे अनुमति दीजिये । महावीर की संतान कमजोर क्यो बने ? वीर-शावक तुमुल नाद से जागा है आप उसे प्रोत्साहन दीजिये ।

(xi) **अनुभवी वृद्ध पुरुषों का नेतृत्व:—**

50 से 70 वर्ष की अवस्था के महाजन ध्यान से सुन ले । अब वे संसार से कितना 'रस' और लेना चाहते है ? बहुत हो चुका । आपने आवश्यकता से अधिक इस संसार के सुखो को देख लिया । यह ससार किसी दिन अचानक आपको लूट लेगा, हड़प लेगा । कुछ नेक कमाई कीजिये । आपकी बुद्धि ठीक, शरीर बल कायम, 'सतान आपकी योग्य,

आपका स्थान लेने को तैयार। समाज के प्रति, धर्म के प्रति अपना अमूल्य समय दीजिये, शक्ति दीजिये, बुद्धि दीजिये और युवा पीढ़ी का नेतृत्व कीजिये ।

प्रत्येक नगर में, कस्बे में, गाँव में अगर 10 महानुभाव ऐसे मिल जायें तो स्वत: ही

'महावीर हाई कमाण्ड'

तैयार हो जायेगा। समाज और धर्म को आपका नेतृत्व मिल जायेगा। धर्म लगड़ा है उसे लाठी का सहारा चाहिए। आप ही उसे गतिमान करेंगे। वह आपकी रक्षा करेगा।

25वी महावीर निर्वाण शताब्दी मे आप 'वीर सेना' का सिपाही बनिये या नायक बनिये यह आपकी इच्छा और शक्ति पर निर्भर है।

मृत्युपर्यंत गृहस्थ धर्म को भोगते रहने की लालसा तीव्र होना कोई बड़प्पन की बात नही है। क्या हर्ज है अगर पुरानी 'स्वस्थ परम्परा' पुन: चालू की जाये। 50-55 की आयु के पश्चात् त्याग की प्रथा को पुनर्जीवित किया जाये। आप इस सुनहरी अवसर पर दृढ़ सकल्प कीजिये। समाज और धर्म आपके नेतृत्व की अपेक्षा करता है।

(xii) **जन सम्पर्क:—**

भारत केवल शहरों में ही नही बसता, उसकी 82% जनसंख्या लगभग साढे सात लाख गांवों मे निवास करती है। जैनो का कार्य-क्षेत्र मुख्यतया नगरों तक सीमित रहा है। वहाँ कुछ कर्मठ लोग समारोहों, गोष्ठियों तथा साहित्य निर्माण द्वारा अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। हम ऐसे कर्मठ लोगो के बडे कृतज्ञ हैं जो इतना भी कर पाते हैं।

इस 25 वी शताब्दी समारोह के अवसर तक यदि हम अपने अपने नगर या स्थान के प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क कायम करके महावीर की कल्याणमयी वाणी उन तक पहुँचाते है तो यह भी एक सराहनीय सेवा होगी। परन्तु महावीर तो सारे भारत और विश्व के लिए है। हमने उन्हे सीमित क्यो कर रखा है ?

जन-सम्पर्क की एक योजना बनाई जाये। प्रत्येक जिला, नगर, तहसील अपने आसपास के गावो की एक सूची तैयार करे। जहाँ-जहाँ भी यातायात की सुविधा प्राप्त हो वहाँ 5-7 कर्मठ अनुभवी व्यक्तियो के प्रतिनिधि मण्डल भेजे जाये। मण्डली में गायक, उपदेशक, कवि, कथाकार, चिकित्सक तथा सहायता (Relief) बाँटने वाले व्यक्ति होने चाहिये। कोई कटाक्ष की बात न हो, कोई धर्म परिवर्तन का उद्देश्य न हो। केवल मानव धर्म, अहिंसा धर्म, प्रेम-धर्म, समानता-धर्म का प्रचार किया जाये। उस प्रदेश के लोगो की कपडे से, दवाई से, रोजगार से तथा ज्ञानदान से सहायता की जाये। उन्हे बताया जाये कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नानक, गांधी भारत के ही रत्न थे। वे आपको उन्नत बनाना चाहते थे।

इन सब सेवाओ के लिये सरकारी सहायता की उपेक्षा न की जाये। आखिर सरकार भी तो हम ही लोग हैं। हमारे आंदोलन का उद्देश्य होना चाहिये अज्ञानता, दु ख-दर्द, पीड़ा, बेकारी को दूर करना तथा सहानुभूति, समानता और मैत्री का वातावरण उत्पन्न करना एव बडो का आदर और छोटों से प्रेम करना।

(xiii) केन्द्रीय दान प्रणाली:—

25वी शताब्दी सम्बन्धी स्थानीय और केन्द्रीय अहिंसा आदोलन को चलाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ेगी। जन-जन की सहायता से धन एकत्रित किया जाये। सभी छोटे बडे इस महान् यज्ञ मे भागीदार बने। योजना बड़ी सरल सहल, परन्तु प्रभावकारी है:—

मान लो जैनो की सख्या है कम से कम 50 लाख । इसमें 25 लाख ऐसे व्यक्ति होगे जो प्रतिदिन 2½ पैसे आसानी से निकाल सकते हैं । महीने के अत मे प्रति व्यक्ति 50 पैसे से 100 पैसे दे । वर्ष-भर के पश्चात् यह राशि 25 लाख वयस्क आदमियो से इकट्ठी की हुई '3 करोड' तक जा पहुचेगी । इसमें सभी का हिस्सा होगा, सभी की सद्भावना होगी । डेढ करोड रुपया तो स्थानीय समितियाँ जरूरी व्यय के लिये अपने पास रख ले और शेष 1½ करोड की एकत्रित राशि भारत केन्द्रीय समिति को दे दी जाये । कितना बड़ा काम हो सकता है यदि ईमानदारी मे किया जाये ।

इस योजना को प्रादेशिक रूप में पहले मास मे दिल्ली में सफल बनाया जाये और शेप प्रातो के लिये आदर्श उपस्थित किया जाये । इस योजना की कार्यान्विति के लिये अनुशासनप्रिय, कर्मठ, विशेष रूप से ईमानदार आदमी चाहिये

(xiv) **जैन मिशन की स्थापना:—**

जैन धर्म को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने के लिये ससार के देशो की राजधानियो तथा मुख्य नगरो में जैन मिशन (Jain Mission) की स्थापना की जाये । इस दिशा मे योजनाबद्ध भिन्न-भिन्न देशो की सरकारो से पत्र-व्यवहार करके तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N O.) के माध्यम से प्रत्येक राजधानी तथा नगर मे अनुभवी, सेवाभावी, त्यागोन्मुख जैन तथा जैनेतर विद्वानो के सहयोग से 'जैन मिशन' की स्थापना की जाये । इस सम्बन्ध में स्थानीय सर्वजन उपकारी (Philanthropists) लोगो से जो भी सहायता मिले, ग्रहण की जाये । पहला कदम उठाने पर दूसरा कदम स्वत: ही आगे निकल आयेगा । समस्या केवल योजनाबद्ध तरीके से कार्य आरम्भ करने की है ।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष तथा परोक्ष साधनों द्वारा तथा दृढ सकल्प करके स्त्री-समाज, युवा पीढ़ी, अनुभवी लोगों, समाजसेवी तथा विद्वानों एव प्रेस व टेलिविज़न द्वारा जैन धर्म की ह्रास-गाथा को प्रगति की सुन्दर वाटिका में परिवर्तित करने का भगीरथ प्रयास किया जाये ताकि ससार में सर्व-कल्याणकारी अहिंसा-शासन की स्थापना करके 'रामराज्य' को साकार किया जाये।

यह जैन धर्म की वास्तविक गतिशीलता होगी। ससार को जैन धर्म की यह अमूल्य देन होगी ।



अध्याय

12 जैनों की साहित्य-सेवा

(क)

ससार मे साहित्य का निर्माण क्या हुआ मानों अतीत से उसका जुडा हुआ सम्बन्ध स्पष्ट नजर आने लगा। साहित्य ने मनुष्य समाज की महान् कलाकृतियों तथा उपलब्धियों को लिपि-बद्ध करके अगली पीढी के लिये सुरक्षित रखा है। साहित्य ने अदृश्य विचारों को मूर्त रूप देकर सभ्यता व सस्कृति की बेल को पल्लवित तथा पुष्पित रखने के लिये कितनी अविस्मरणीय सेवा की है।

जिस देश या जाति का कोई साहित्य नहीं है उसकी दशा 'पाषाण-युगीन व्यक्ति' की सी होती है। जिस देश का साहित्य समृद्ध नही होता, वह पिछड़ा हुआ, विचारहीन और असभ्य देश माना जाता है।

आपका मस्तक गर्व से उन्नत हो जायेगा और छाती खुशी से फूल उठेगी जब आपको यह मालूम होगा कि—

'जैनो ने भारतीय साहित्य को अमूल्य मौलिक रत्न दिये हैं'। साहित्य की कोई ऐसी शाखा नही जिसे उन्होने चार चाँद न लगाये हो।

भारत की प्राचीन भाषाओं सस्कृत, प्राकृत तथा प्रादेशिक भाषाओं जैसे-मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड तथा अन्य द्रवेडियन भाषाओं में विपुल साहित्य सृजन किया है। जैन धर्म मे प्रकाण्ड जैनाचार्य हो गये हैं जो प्रबल तार्किक, वैयाकरण, कवि और दार्शनिक थे। उन्होंने जैन धर्म के साथ साथ भारतीय साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी अपनी लेखनी के जौहर दिखाये हैं।

दर्शन, न्याय, व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलकार, सगीत-कथा, शिल्प, मत्र-तत्र, वास्तुकला, चित्रकला, वैद्यक, गणित, ज्योतिष, शकुन, निमित्त, स्वप्न, सामुद्रिक, रमल, लक्षण, अर्थ, रत्नशास्त्र, मुद्राशास्त्र, नीति शास्त्र, धातु विज्ञान, प्राणि विज्ञान आदि विषयो पर महत्वपूर्ण ग्रथो का निर्माण किया गया है।

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने अपने आपको और समूचे लोक को देखा। उन्होने अपने प्रवचनो में बध और बंध-हेतु, मोक्ष और मोक्ष-हेतु का स्वरूप बताया। भगवान् की वाणी 'आगम' कहलाई। उनके प्रधान शिष्य गौतम (इन्द्रभूति) आदि ग्यारह गणधरो ने उसे सूत्ररूप मे गूंथा। भगवान् के प्रकीर्ण उपदेश को 'अर्थागम' और उनके आधार पर की गई सूत्र रचना को 'सूत्रागम' कहा गया। वे आचार्यो के लिये 'धर्म निधि' बन गये, इसलिये उनका नाम 'गणिपिटक' हुआ। इसके बारह भाग हुये जिसे 'द्वादशागी' नाम से पुकारा गया।

'चौदह पूर्व' के ज्ञान का परिमाण बहुत विशाल है। वे 'पूर्व श्रुत या शब्द ज्ञान के समस्त विषयो के 'अक्षय-कोष' होते हैं। इनके अध्येता श्रुतकेवली कहलाते हैं।

'चौदह पूर्व' का ज्ञान-विच्छेद हो चुका है। इन का पूर्ण-विच्छेद ईसा की 5वी शताब्दी तक हो चुका था। महावीर के ग्यारह गणधरों के अतिरिक्त अन्य ज्ञानवान् आचार्यो तथा चिंतको ने वीर वाणी की छाया मे जीवनोपयोगी, मोक्ष—मार्गी रचनाए कीं जिनकी प्रतिष्ठा द्वादशागी के पश्चात्वर्ती की गई।

महावीर निर्वाण से कई शताब्दी पीछे शास्त्रज्ञान अथवा श्रुत-ज्ञान 'गुरुमुख' से प्राप्त करने की प्रथा सर्वोत्तम मानी जाती रही और कई कारणों से उसे लिपिबद्ध करने की उपेक्षा की जाती रही।

राजनैतिक अस्थिरता तथा लम्बे दुर्भिक्षो के कारण श्रुत ज्ञान क्षीण होता गया। विकीर्ण महावीर-वाणी को एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित 'तीन वाचनाएँ' की गईं जिनमें विद्वान् मुनि सम्मिलित हुए और जो जिसको स्मरण या कण्ठ था, पेश किया।

1. पाटलीपुत्र मे वीर निर्वाण से 160 वर्ष पश्चात्
2 (क) मथुरा में स्कन्दिल की अध्यक्षता मे वीर निर्वाण से 825 वर्ष पश्चात्
   (ख) वल्लभी में नागार्जुन सूरी की अध्यक्षता में
3. वल्लभी मे देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता मे वीर-निर्वाण के 980/983 वर्ष पश्चात्

आचार्य देवर्द्धिगणी ने अत्यन्त परिश्रम से प्राकृत में जो कुछ सकलन किया वह 'शास्त्र' रूप मे निम्न नामो से प्रसिद्ध हुआ.—

क्रमांक	नाम शास्त्र	शास्त्र सख्या
1	अग	12 (अंतिम 12वां अग
2	उपाग	12 विच्छेद हो चुका है)
3	मूल सूत्र	4
4	छेद सूत्र	6
5	चूलिका सूत्र	2
6	प्रकीर्णक	12

आगमो का वर्तमान सस्करण 'देवर्द्धिगणी' का है। अगो के कर्त्ता गणधर है। अग-बाह्य-श्रुत के कर्त्ता स्थविर है। उन सबका संकलन और सम्पादन करने वाले देवर्द्धिगणी है, अतः वह आगमो के वर्तमान रूप के कर्त्ता भी माने जाते है।

अध्याय

12

(ख)

जैन धर्म शास्त्र—दिगम्बर जैन समाज की मान्यता

दिगम्बर जैन समाज की धारणा धर्म-शास्त्रों के बारे में इस प्रकार है:—

'दृष्टिवाद अंग' के 'पूर्वगत' ग्रथ का कुछ अंश ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दी में श्री 'धरसेन' आचार्य को ज्ञात था। उन्होने देखा कि यदि वह शेष अंश भी लिपिवद्ध नहीं किया गया तो भगवान् महावीर की वाणी का सर्वथा लोप हो जायेगा। फलत: उन्होंने 'पुष्प दंत' और 'भूतवलि' जैसे मेधावी मुनियों को बुलाकर गिरिनार पर्वत की चद्र-गुफा में उसे लिपिबद्ध कर दिया। उन दोनों विद्वान् मुनियों ने उस लिपिवद्ध श्रुतज्ञान को ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन सर्वसंध के समक्ष उपस्थित किया था। वह पवित्र दिन 'श्रुतपंचमी' के नाम से प्रसिद्ध है और साहित्योद्धार का प्रेरक कारण बन रहा है।

बारहवां अंग दृष्टिवाद विच्छेद हो चुका है जिसके पाँच भाग 1. परिक्रम 2. सूत्र 3. प्रथमानुयोग 4. पूर्वगत 5. चूलिका थे।

'पूर्वगत' ही चौदह-पूर्व के शब्द ज्ञान से विख्यात था। 'पूर्वों' में सारा श्रुतज्ञान समा जाता है किन्तु साधारण बुद्धि वाले उसे पढ़ नही सकते। उनके लिये 'द्वादशागी' की रचना की गई।

भूतबलि और पुष्पदत ने आचार्य धरसेन से श्रुताभ्यास करने के पश्चात् प्राकृत भाषा में, गद्य में जिस अद्वितीय ग्रथ को रचना की

उसका पुण्य नाम 'षट्खण्डागम' है जो निम्न नामों से भी विख्यात है:—

'षट्खण्डागम'

1. कर्म प्राभृत या कर्म पाहुड
2. महाकर्म प्राभृत
3. आगम सिद्धात
4. खण्ड सिद्धांत
5. षट्खण्ड सिद्धांत

महामुनि भूत बलि और पुष्प दंत वीर निर्वाण की छटी—सप्तमी शताब्दी के मध्य मे रहे। इनके समकालीन 'गुणधर' नाम के आचार्य हुए। उन्होने 233 गाथाओ में 'कसायपाहुड' या 'कषाय प्राभृत' ग्रंथ की रचना की जिस पर 'यति वृषभ' आचार्य ने 6000 श्लोक प्रमाण 'वृत्तिसूत्र' प्राकृत में रचे।

उपर्युक्त दोनों महान् ग्रंथो पर अनेक टीकाएँ रची गईं जो उपलब्ध नही हैं। इनके अंतिम टीकाकार 'वीरसेन' आचार्य हुए जो बड़े समर्थ विद्वान् थे। उन्होने षट्खण्डागम पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका 'धवला' शक सम्वत् 738 में पूरी की जिसकी श्लोक सख्या 72000 है।

दूसरे महान् ग्रथ 'कसायपाहुड' पर भी उन्होने टीका लिखनी आरम्भ की। उसके यह 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख सके कि स्वर्गवासी हुए। इनके कार्य को उनके सुयोग्य शिष्य 'जिनसेन' आचार्य ने 40000 श्लोक और अधिक लिखकर इस गुरुतर कार्य की पूर्ति शक सम्वत् 759 में की। इस टीका का नाम 'जय धवला' है जिसकी कुल श्लोक सख्या 60000 है। उपर्युक्त दोनो ग्रथो की टीकाओ की रचना संस्कृत और प्राकृत के सम्मिश्रण से की गई है। बहु-भाग इस का प्राकृत में है।

अध्याय

13 जैनाचार्यों की साहित्य-सेवा

आगम ग्रन्थो से सम्बन्धित अनेक उत्तरकालीन रचनाएँ की गई जिनका उद्देश्य आगमो के विषय को सक्षेप या विस्तार से समझाना था। ऐसी रचनाए चार प्रकार की है:—

1. निर्युक्ति (णिज्जुति')
2. भाष्य ('भास')
3. चूर्णि ('चुण्णि')
4. टीका या वृत्ति

1. 'निर्युक्तियाँ' अपनी भाषा, शैली व विषय की दृष्टि से सब प्राचीन है। ये प्राकृत पद्यो में लिखी गई है और सक्षेप में विषय का प्रतिपादन करती हैं। इनमें प्रसंगानुसार विविध कथाओ व दृष्टांतों के संकेत मिलते हैं। इस समय आचाराग आदि 9 आगमो की निर्युक्तियां मिलती है और वे 'भद्रबाहु' (द्वितीय) कृत मानी जाती है।

2. 'भाष्य' भी प्राकृत गाथाओ में रचित सक्षिप्त प्रकरण हैं। यह 'कल्प' आदि 'आठ आगमो' पर लिखे गये है। 'संघदास गणि' व 'जिनभद्र' ने कई आगमो पर भाष्य लिखे है।

3. चूर्णियाँ:—भाषा व रचना शैली की दृष्टि से अपनी विशेषता रखती है। वे प्राकृत-सस्कृत मिश्रित गद्य मे लिखी गई है। लगभग 18 आगमों पर 'जिनदास गणि महत्तर' ने ईसा की सातवी शताब्दी में चूर्णियाँ लिखीं।

4. वृत्तियां संस्कृत मे विस्तार से लिखी गई हैं। 'हरिभद्रसूरी',

'शीलांकसूरि', 'शांति चंद्र', 'अभयदेव सूरि', मलधारी हेमचंद्र', 'मलय-गिरि', 'द्रोणाचार्य', 'क्षेमकीर्ति' अनेक वृत्तियों के कर्त्ता थे। अभयदेव सूरि ने दो आगमों को छोड़ शेष सब पर अत्यंत उपयोगी वृत्तियाँ लिखी। शोलाक सूरी ने शेष दो आगमों—आचारांग व सूत्रकृतांग पर टीकाएँ (वृत्तिया) लिखी।

—जैन आचार्य—

जैनाचार्यों तथा उनके प्रबुद्ध, अपरिग्रही, सेवाभावी, मुनिवर्ग ने भारतीय समाज के समक्ष अपनी ऊँची आचार-विचार प्रणाली उपस्थित की तथा भ्रमण करते हुए जन-जन के समीप जाकर उसे बोध दिया। अन्य समय में, विशेषकर चौमासे में वे एक स्थान में स्थित रहकर, एकाग्रचित्त होकर तपस्या करते थे, शास्त्रों का मंथन करते थे और शास्त्रीय आधार पर अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध करते थे। उनकी लेखनी ने नाना प्रकार के साहित्य का सृजन किया। सभ्य समाज के लिए उन्होने ऐसा कोई विषय नहीं छोड़ा जिस पर उन्होंने अपने उच्च विचार व्यक्त न किये हों। ऐसे त्यागी, परोपकारी तथा आत्मार्थी मुनियो का समाज में बड़ा आदर था। उनकी कुछेक कृतियो का वर्णन नीचे दिया जाता है।

(1) आचार्य कुंदकुंद:—

'प्राकृत पाहुडो' की रचना की परम्परा में आचार्य कुंदकुंद का नाम सुविख्यात है। जैनो की दिगम्बर सम्प्रदाय में उन्हे जो स्थान प्राप्त है, वह दूसरे किसी ग्रन्थकार को प्राप्त नही हो सका। उनका शुभ नाम एक मगल पद में भगवान् महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् ही तीसरे स्थान पर आता है।

उन्होंने कोई 84 पाहुडो की रचना की, किन्तु वर्तमान मे उनकी निम्न रचनायें प्रसिद्ध है:—

1. समयसार 2. प्रवचनसार 3. पश्चास्तिकाय 4. नियमसार 5. रयणसार 6. देश-भक्ति 7. अष्ट पाहुड 8. बारसं अणु-वेक्खा ।

'अमृतचद सूरि' व 'जयसेन' ने उपर्युक्त मे से कतिपय पर टीकाएं लिखी है । 'बालचद्रदेव' ने 12वी—13वी शताब्दी मे उन पर 'कन्नड' भाषा में टीकाएं लिखी ।

आचार्य कुंदकुंद ने तमिल भाषा में 'कुरल या कुरुल' नामक एक महाकाव्य रचा और 'थिरुवल्लुवर' नामक अपने शिष्य के हाथ विद्वत् समाज मे पेश करने के लिये भेज दिया । विद्वत्मण्डल ने उसे खूब पसद किया । 'कुरल' तमिल साहित्य का 'ग्रथ रत्न,' बन गया, 'कुरुल' नीति का एक अपूर्व ग्रन्थ है और तमिल देशमे वह 'पाचवाँ वेद' विख्यात है । इसकी रचना ऐसी उदार दृष्टि से की गई है कि प्रत्येक धर्म का अनुयायी उसे अपना मान्य ग्रन्थ स्वीकार करने मे गर्व महसूस करता है ।

(2) वट्टकेर:—

वट्टकेर प्रथम शताब्दी ई० पू० रहे । इनके द्वारा लिखित 'मूलाचार' जैन मुनियों के आचार के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक ग्रन्थ है । यह दिगम्बरो का आचाराग शास्त्र है ।

(3) आचार्य कुमार या कार्त्तिकेय:—

'कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा' इन आचार्य द्वारा रचित प्राकृत भाषा में एक उत्तम ग्रन्थ है । इसमें बारह अध्याय है जो मुनि तथा श्रावक के लिये मोक्ष प्राप्ति के सुन्दर निबन्ध हैं ।

उमास्वाति या उमास्वामी:—

(3) गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति या उमास्वामि 'तत्त्वार्थाधिगम' (तत्वार्थ) सूत्र के कर्त्ता थे । यह सस्कृत में प्रथम जैन ग्रन्थ है जिसे

जैनो की सभी सम्प्रदायें मान्यता देती है। इसे जैनो की 'बाइबिल' कहते हैं। छोटे मोटे लगभग 356 सूत्रों द्वारा, दश अध्यायो में, जैन धर्म के मूलभूत सात तत्वो का विधिवत् निरूपण ग्रन्थ में आ गया है, जिससे इस ग्रन्थ को समस्त जैन सिद्धांत की कुंजी कहा जा सकता है। इसी कारण लाक-प्रियता और सुविस्तृत प्रचार की दृष्टि से यह ग्रन्थ जैन साहित्य मे अद्वितीय है। इसकी मुख्य टीकाएँ इस प्रकार हैं:—

1. सर्वार्थ सिद्धि — देवनंदिपूज्पाद कृत
2. तत्वार्थ राजवार्तिक — अकलक कृत
3 तत्वार्थ श्लोकवार्तिक — विद्यानदि ,,
4. तत्वार्थं भाष्य वृत्ति — स्वोपज्ञ
5. तत्वार्थं भाष्य वृत्ति — सिद्धसेन गणी ,,
6. ,, ,, ,, — हरिभद्र ,,
7. तत्वार्थाधिगम भाष्य पर व्याख्या — मलयगिरि कृत
8. तत्वार्थ-टिप्पण — चिरंतन मुनि कृत
9 तत्वार्थं पर टबा टिप्पणी (गुजराती)—गणी यशोविजय कृत
10. तत्वार्थं वृत्ति — श्रुतसागर सूरि कृत
11. सुखबोध टीका (सस्कृत) भास्कर नंदि कृत
12. साधारण संस्कृत व्याख्या —1. विबुधसेन, 2. योगदेव 3. योगीन्द्र देव 4. लक्ष्मीदेव 5. अभयनंदि सूरि कृत
13. (कर्णाटक) भाषा में अनेक टीकाएँ रची गई
    (हिन्दी) भाषा मे — ,,
14. (अग्रेजी) भाषा में — जे० एल० जैनी कृत
15. (जर्मन) भाषा में — डा० हर्मन जेकोबी कृत

(4) पादलिप्त सूरी व विमल सूरि:—

इन्होने प्राकृत में अद्‌भुत लेखन कार्य किया। पादलिप्त सूरि ने 'तरंगवती' नाम का एक धार्मिक उपन्यास लिखा। इसका उल्लेख जिन-भद्र के 'विशेषावश्यक भाष्य' में, दाक्षिण्यचिह्न की 'कुवलयमाला' में तथा धनपाल द्वारा लिखित 'तिलकमजरी' में आया है।

विमलसूरि ने 'पद्मचरित' लिखा जिसमें भगवान् राम की वीर गाथा का वर्णन है। इसके 118 आख्यान (chapter) है। राम का ही नाम 'पद्म' हैं।

(5) शिवशर्मा व चद्र ऋषि:—

इनके द्वारा क्रमश: 'कर्म प्रकृति' और 'पच सग्रह' कर्मवाद के ऊपर जैन के यह दो उत्तम ग्रन्थ लिखे गये हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में इनका निर्माण किया गया। आचार्य मलयगिरि ने इन दोनों ग्रन्थो पर अपने भाष्य लिखे हैं।

(6) सिद्धसेन:—

सिद्धसेन दिवाकर एक उच्चकोटि के दार्शनिक (logician) थे। यह उमास्वाति की तरह सर्वप्रिय थे। आचार्य जिनसेन ने आदर के साथ इनका स्मरण किया है। इनकी सूक्तियों को भगवान् ऋषमदेव की सूक्तियो के समकक्ष बताया है। सिद्धसेन को प्रतिवादिरूप हाथियो के समूह के लिये विकल्परूप नखोयुक्त 'सिह' बताया है।

इनका 'सन्मति तर्क' ग्रन्थ अति प्रसिद्ध और बहुमान्य है, जो प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है। इनके अन्य ग्रंथ हैं—'न्यायावतार' तथा द्वात्रिंशकाएं जो सस्कृत में है। इनके सभी ग्रन्थ गहन दार्शनिक चर्चाओं से परिपूर्ण हैं।

(9) मल्लवादीः—

यह प्रबल तार्किक थे। आचार्य हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में लिखा है कि सब तार्किक मल्लवादी से पीछे है। 'द्वादशारनयचक्र' इन द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रथ है जो उपलब्ध नही है किन्तु उस पर सिंह क्षमाश्रमण द्वारा लिखित टीका अवश्य मिलती है।

मल्लवादी ने सिद्धसेन दिवाकर कृत 'सन्मति तर्क' पर आलोचना (Commentary) लिखी है जो अप्राप्य है। आचार्य हरिभद्र ने अपने 'अनेकातजयपताका' ग्रथ में इनका 'वादिमुख्य' नाम से उल्लेख किया है। मल्लवादी विक्रम की 18वी शती से पूर्व हुए।

(10) अकलक०:—

यह जैन न्याय के प्रतिष्ठाता थे। यह प्रकाण्ड पण्डित, धुरधर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। जैन न्याय को इन्होंने जो रूप दिया उसे उत्तरकालीन जैन ग्रंथकारों ने अपनाया। स्वामी समत-भद्र के यह सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। उनके 'आप्तमीमासा' ग्रन्थ पर 'अष्टशती' नामक भाष्य की रचना की। इनकी रचनाएँ दुरूह और गम्भीर है। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं:—

1. अष्टशती 2. लघीयस्त्रय 3. प्रमाण संग्रह 4. न्याय विनिश्चय 5. सिद्धि विनिश्चय 6. तत्वार्थ राजवार्त्तिक

(11) हरिभद्र सूरी:—

आप आठवी शती ई० में संस्कृत तथा प्राकृत मे अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता हुए। इन्होंने गद्य एव पद्य में खूब लिखा। भारतीय दर्शन में 'षड्दर्शन समुच्चय' नामक इनका ग्रन्थ एक विशद आलोचना है। दर्शन विषय पर इनके अन्य रचित शास्त्र निम्नलिखित हैं:—

1. अनेकात प्रवेश 2. अनेकात जयपताका 3. ललित विस्तार 4. शास्त्रवार्ता समुच्चय 5. द्विजवदन

चपेटा 6. परलोक सिद्धि 7. सर्वज्ञान सिद्धि
8. धर्मसंग्रहणी 9. लोक तत्व निर्णय

योग विद्या पर हरिभद्रसूरी के ग्रन्थ ये हैं:—

1. योग दृष्टि समुच्चय 2. योग बिन्दु 3. योग शतक
4. षोडशक

कथा-वस्तु पर इनके रचित ग्रन्थ:—

1. समरादित्य कथा (समराइच्च कहा)
2. धूर्ताख्यान

आचार शास्त्रो मे 'धर्म बिन्दु' इनका ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ है। यह सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। भिन्न विषयो पर इनके लेख तथा आलोचनाएं सर्वमान्य हैं।

(12) विद्यानदि:—

ईसा की नवमी शताब्दी में विद्यानदि अपने समय के समर्थ विद्वान् थे। इन्होने अकलकदेव की 'अष्टशती' पर 'अष्टसहस्री' नाम का महान् ग्रन्थ लिखा। अति कठिन होने के कारण उसे कष्ट सहस्री भी कहा जाता है। विद्यानदि सभी भारतीय दर्शनों (हिन्दु, वैदिक, जैन, बौद्ध) के पारगामी विद्वान् थे। उन्होने तत्वार्थ सूत्र पर 'तत्वार्थश्लोकवार्तिक' एक सुन्दर भाष्य लिखा।

दर्शनशास्त्र पर उनके मौलिक ग्रथ निम्न हैं:—

1. आप्त परीक्षा 2. प्रमाण परीक्षा 3. पत्र परीक्षा
4. सत्यशासन परीक्षा 5. विद्यानद महोदय (अप्राप्य)

स्वामी समतभद्र के युक्त्यनुशासन पर 'युक्त्यनुशासनालंकार' इन की एक महत्वपूर्ण भाष्य रचना है।

अपने 'श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र' की रचना की 'पचप्रकरण के कर्त्ता आपको ही माना जाता है।

आपने अपनी समस्त कृतियां संस्कृत में लिखी हैं,

अध्याय 14(क) जैन पुराण, जैन कथा साहित्य, जैन व्याकरण

(1) पुराण चरित :—

जिनमें पुराण पुरुषो का चरित्र वर्णन किया गया हो उसे पुराण कहते है। पुराण साहित्य मे "महापुराण" "पद्मचरित", "हरिवंश-चरित" आदि ग्रथो का नाम उल्लेखनीय है।

महापुराण (नवी शताब्दी ई०) जैन पुराणो मे सबसे प्राचीन है। जैन पुराणो का मूल प्रतिपाद्य विषय 63 शलाका पुरुषो के चरित्र है। इनमे 14 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रति-वासुदेव है। महापुराण रचयिता जिनसेन और गुणभद्र है। महापुराण के दो भाग हैं—आदिपुराण और उत्तर पुराण। आदिपुराण के 47 अध्याय है जिनमे से 42 अध्याय जिनसेन द्वारा तथा शेष 5 गुणभद्र द्वारा रचित किये गये। उत्तर पुराण में 30 अध्याय है जो समूचे गुण भद्र द्वारा लिखे गये।

महापुराण संस्कृत मे एक वीर गाथा (Epic poem) है।

पद्मचरित व हरिवश पुराण जैनो की रामायण व महाभारत हैं। हरिवंश पुराण 'जिनसेन' द्वारा रचा गया। यह जिनसेन महा-पुराण के जिनसेन से भिन्न हैं।

इनके सिवा चरित ग्रथो का जैन साहित्य में भण्डार भरा पड़ा है सकलकीर्ति आदि आचार्यों ने अपने चरित ग्रंथ रचे है।

आचार्य जटा सिंह नदिका वरांग चरित एक सुन्दर पौराणिक

काव्य है। अन्य उच्चकोटि के संस्कृत साहित्य काव्य निम्न हैं।

1. चंद्र प्रभ चरित-वीर नदिकृत 2. धर्म शर्माभ्युदय-हरिचन्द्र कृत 3 द्विसधान—धनजय कृत 4. नेमि निर्वाण—वाग्भट्ट कृत 5. महापुराण—मल्लिषेण कृत 1047 ई.

पुराण व चरित (अपभ्रंश भाषा मे) :—

अपभ्रंश भाषा में तो जैन कवियो ने खूब रचनाएं की हैं। इस भाषा का साहित्य जैन भण्डारो मे भरा पड़ा है। अपभ्रंश बहुत समय तक यहाँ की लोक भाषा रही है और उसका साहित्य भी बहुत लोकप्रिय रहा है। पिछले कुछ दशको से इस भाषा की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। अब तो वर्तमान प्रातीय भाषाओ की जननी होने के कारण भाषाशास्त्रियो और विभिन्न भाषाओं का इतिहास लिखने वालों के लिए अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक हो गया है।

पुष्पदत अपभ्रंश के महान् कवि थे। इनका "त्रिषष्टि महापुरुष गुणालकार" एक अपूर्व ग्रंथ है। पुष्पदत ने महाकवि स्वयम्भू का स्मरण किया है।

स्वयम्भू कनकामर, रइधु आदि अनेक कवियो ने अपभ्रंश भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाने के लिये कोई कोर कसर उठा नही रखी।

पुष्प दत ने यशोधर चरित और नागकुमार चरित भी लिखे हैं।

(ii) कथा साहित्य

जैनो द्वारा निर्मित कथा साहित्य भी विशाल है। आचार्य हरिषेण का कथाकोष प्राचीन ई. (932) है। 'आराधना कथा कोष' पुण्याश्रव

कथा कोष" आदि कई कथाकोष हैं जिनके द्वारा धर्माचरण का शुभ फल और अधर्माचरण का अशुभ फल दिखलाया गया है।

'चम्पू काव्य' भी जैन साहित्य में बहुत है। सोमदेव का 'यशस्तिलक चम्पू' हरिचन्द्र का 'जीवन्धर चम्पू' और अर्हद् दास का 'पुरु देव चम्पू' उत्कृष्ट चम्पू काव्य है।

गद्यग्रथो में वादीभ सिंह की गद्यचिंतामणि उल्लेखनीय है ।

(iii) व्याकरण सस्कृत

व्याकरण से ज्ञान मूर्त रूप बनता है। वैयाकरणो ने व्याकरण के विस्तार और दुष्करता का ध्यान दिलाते हुए व्याकरण का अध्ययन करने की प्रेरणा इस प्रकार दी है:—

व्याकरण शास्त्र का अत नही है। आयु बहुत थोड़ी है और विघ्नो से भरपूर है। इसलिए जैसे हंस, पानी मिश्रित दूध में से, सिर्फ दूध ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार निरर्थक विस्तार को छोड़ कर सार रूप व्याकरण को ग्रहण करना चाहिए।

सिद्ध सेन गणि ने कहा है कि पूर्वों में जो शब्दप्रामृत है, उसमें से व्याकरण का उद्भव हुआ है।

जैनेन्द्र व्याकरण (पञ्चाध्यायी)

जैनाचार्य देवनंदि द्वारा रचित जैनेन्द्र व्याकरण मौलिक व्याकरणो में ऊंचा स्थान रखता है। इसमें पॉच अध्याय होने से इसे पंचाध्यायी भी कहते हैं। इसमें प्रकरण, विभाग आदि नही हैं। पाणिनि की तरह विधान क्रम को लक्ष्य करके सूत्र रचना की गई है। इस व्याकरण

पर समय-समय पर एक दर्जन से अधिक वृत्तियां लिखी गई हैं जो प्राप्य हैं ।

शाकटायन व्याकरण

पाणिनि ने जिन शाकटायन नामक वैयाकरणाचार्य का उल्लेख किया है वह पाणिनि से पूर्व हुए थे, परन्तु जिनका शाकटायन व्याकरण आज उपलब्ध है उनका वास्तविक नाम तो है पालकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है 'शब्दानुशासन' पाणिनि द्वारा बताये गये इस प्राचीन शाकटायन आचार्य की तरह पालकीर्ति प्रसिद्ध वैयाकरण होने से शाकटायन के समकक्ष हुए ।

राजा अमोघवर्ष के राज्य काल (वि. स. 871) में पालकीर्ति यापनीय संघ के अग्रणी आचार्य थे ।

यक्षवर्मा ने शाकटायन व्याकरण की चिंतामणि टीका मे इस व्याकरण की विशेषता बताते हुए कहा है :—

इष्टिया पढने की जरूरत नही । सूत्रो से अलग वक्तव्य कुछ नहीं है । 'उपसंख्यानो' की ज़रूरत नही है । इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो शब्द-लक्षण कहा वह सब इस व्याकरण में आ जाता है और जो यहां नही है वह कही भी नही मिलेगा । शाकटायन व्याकरण पर बहुत सी वृत्तियो की रचना हुई है ।

संस्कृत में अन्य जैन व्याकरणो के नाम नीचे दिये जाते हैं ।

क्रम सं०	नाम वैयाकरण	श्लोक संख्या	नाम व्याकरण	समय
1	बुद्धि सागर	7000	बुद्धि सागर व्याकरण	वि. स. 1080
2	भद्रेश्वर सूरि		दीपक व्याकरण	12वी शती

3 मलयगिरि सूरि	4500	शकानुशासन	वि. 18वी शती
4. सहजकीर्तिगण	1700	शकार्णव व्याकरण (स्वोपज्ञ वृत्ति सहित)	वि. स, 1680
5 विद्यानंद सूरि	अनुपलब्ध	विद्यानंद व्याकरण	,, 1321
6 जय सिंह सूरी	—	नूतन व्याकरण	,, 1440
7 प्रेमलाभ	—	प्रेमलाभ व्याकरण	,, 1283
8 शब्द भूषण	300	शब्द भूषण व्याकरण	,, 1770
9 हेमचद्र सूरि	5691	सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन	,, 1245

सिद्धहेमचद्रशब्दानुशासन.-

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह की विनती से जैनधर्म कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि ने सिद्धराज के नाम के साथ अपना नाम जोड़कर "सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन" की रचना की। इस व्याकरण की छोटी बड़ी वृत्तिया और 'उणादि' पाठ, 'गणपाठ' 'धातुपाठ' 'लिगानुशासन' उन्होने स्वयं लिखे जो कुल 125000 श्लोक प्रमाण है।

ग्रथकर्त्ता ने अपने से पहले के व्याकरणों में रही हुई त्रुटियाँ विश्रृंखलता, क्लिष्टता, विस्तार, दूरान्वय आदि से रहित निर्दोष और सरल व्याकरण की रचना की। सब प्रकार की टीकाओ और पचांगी से सर्वागपूर्ण व्याकरण ग्र थ श्री हेमचन्द्र सूरि के सिवाय और किसी एक ही ग्रंथकार ने निर्माण किया हो ऐसा समग्र भारतीय साहित्य में देखने में नही आता। इस व्याकरण की रचना इतनी आकर्षक है कि इस पर लगभग 62-63 टीकाए, सक्षिप्त तथा सहायक ग्रंथ एव स्वतन्त्र रचनाए उपलब्ध होती है।

ग्रथकर्त्ता ने आत्म-विश्वास से कहा :—

"आकुमारं यश: शाकटायनस्य"

अर्थात् शाकटायन का यश राजा"कुमार पाल" तक ही रहा है क्योंकि तब तक "सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन" न रचा गया था और न प्रचार में आया था।

हेमचद्राचार्य ने इसके अतिरिक्त निम्न विषयों पर अनेको ग्रथ रचे :—

1. कोश 2. साहित्य अलकार 3. छद 4. दर्शन
5. इतिहास काव्य 6. उपदेश 7. योग 8. स्तुति स्तोत्र 9. नीति

उस समय के विद्वत्समाज ने इस सरस्वती पुत्र को "कलिकाल सर्वज्ञ' की उपाधि से विभूषित किया था।

व्याकरण (प्राकृत)

स्वाभाविक बोलचाल की भाषा को प्राकृत कहते हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से प्राकृत के अनेक भेद है। प्राकृत का अन्य स्वरूप अपभ्रंश कहलाता है। इसका प्राचीन देशी भाषाओ से सीधा सम्बन्ध है। इसका व्याकरण स्वरूप ई. छटी-सातवी शताब्दी से निश्चित हो चुका था। महाकवि स्वयम्भू ने अपभ्रंश भाषा की रचना ई. 8वी शताब्दी में की थी जो आज उपलब्ध नही है। आचार्य हेमचद्र ने अपने समय के प्रवाह को देखकर "अपभ्रंश व्याकरण" के लगभग 120 सूत्रो की रचना की थी तथा उसके भिन्न विषयों पर वृत्तियां भी लिखीं।

चण्ड नामक विद्वान् कृत प्राकृत लक्षण जिसमे 99 सूत्र है सक्षिप्ततम व्याकरण है। चण्ड ने स्वय इस पर वृत्ति भी लिखी।

अन्य प्राकृत व्याकरण जो रचे गये निम्न हैं :—

1. प्राकृत शब्दानुशासन त्रिविक्रम कृत 13वीं शताब्दी ई.
(स्वोपज्ञ वृत्ति)

2. औदार्य चिंतामणि श्रुतसागर वि. सं. 1575

3. चिंतामणि व्याकरण शुभचद्र सूरि
(स्वोपज्ञ वृत्ति)

4. अर्धमागधी व्याकरण शतावधानी मुनि रतनचद्र वि.स.1995

5. प्राकृत पाठमाला ,,

कर्णाटक शब्दानुशासन

अकलक ने कन्नड भाषा में इस व्याकरण की रचना की। इसमें 592 सूत्र हैं। नागवर्म द्वारा रचित "कर्णाटक भूषण' व्याकरण की अपेक्षा यह बड़ा है और शब्दमणिदर्पण नामक व्याकरण से इसमें अधिक विषय हैं। इसलिये कर्णाटक शब्दानुशासन सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

अन्य विषयों में जैनो की कृतिया

पुस्तक का कलेवर बढ जाने के भय से तथा पाठको की दिलचस्पी कायम रहे, इस विचार से शेष विषयो मे केवल उपलब्ध ग्रथ सख्या देकर ही संतुष्टि की जाती है :—

क्रम स विषय	निर्मित ग्रथ सख्या	क्रम संख्या विषय	ग्रंथ सख्या
1. कोश	45	4 अलकार	59
2 काव्य	अनेक	5 नाटक	3
8 छंद	31	6 सगीत	7

7 कला	2	17 आयुर्वेद	—29
8 शिल्प	2	18 अर्थशास्त्र	—1
9 स्वप्न	6	19 योग व अध्यात्म	—57
10 सामुद्रिक	8	20 धर्मोपदेश	—63
11 रमल	4	21 गणित	—13
12 लक्षण	6	22 ज्योतिष	—84
13 आय	3	23 शकुन	—6
14 रत्नशास्त्र	5	24 निमित्त	—27
15 धातु विज्ञान	3	25 मंत्र तंत्र, विधि विधान, कल्प, पर्व, तीर्थ	बहुल साहित्य
16 प्राण विज्ञान	5		

—— ० ——

अध्याय

14(ख)

साहित्यसेवी जैनाचार्य

(1) नेमिचन्द्र

ई. 10वी-11वी शती के बीच चामुण्डराय सेनानायक व मंत्री के आप गुरु थे। चामुण्डराय ने अपने आदेश से श्रवण बेलगोल में 57' फीट ऊंची बाहुबलि'' की पाषाण प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठित करवाई। आचार्य नेमिचंद्र की कृतियाँ ये है।

1. द्रव्यसंग्रह 2. गोम्मटसार 3. लब्धि सार 4. क्षपणकसार
5. त्रिलोक सार

उपर्युक्त सभी ग्रंथ प्राकृत भाषा में हैं जो जीव, कर्म, कर्मक्षय, मोक्ष, तीन लोक आदि पर विवेचनात्मक प्रकाश डालते हैं।

(11) प्रभाचद्र

आचार्य प्रभाचद्र एक बहुश्रुत दार्शनिक विद्वान् थे। सभी दर्शनो के प्राय: सभी मौलिक ग्रंथो का उन्होने अभ्यास किया था। यह तथ्य उनके द्वारा रचित ''न्यायकुमुदचद्र'' और ''प्रमेयकमल मार्तण्ड'' नामक ग्रथो के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।

इनका प्रथम ग्रंथ अकलंकदेव के ''लधीस्त्रय'' का व्याख्यान है और दूसरा आचार्य माणिक्यनंदि के ''परीक्षामुख'' नामक ग्रंथ का। श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० 40 में इन्हे ''शब्दाम्भोरुह भास्कर'' और ''प्रथित तर्क ग्रथकार'' बतलाया है इन्होने शाकटायन व्याकरण पर एक विस्तृत न्यास ग्रंथ भी रचा था जिसका कुछ भाग उपलब्ध है। इनके गुरु का नाम पद्मनदि सैद्धांतिक था।

(iii) वादिराज

11वी शती ई. में वादिराज तार्किक होकर उच्चकोटि के कवि थे। उन्हे विद्वत्समाज ने तीन उपाधियो से विभूषित किया था।

1. षटतर्कषण्मुख
2. स्याद्वादविद्यापति
3. जगदेकमल्लवादी

नगर ताल्लुका के शिलालेख नं० 39 में बताया गया है कि—

'वह सभा में अकलंक थे।
''प्रतिपादन करने मे 'धर्म कीर्ति थे।
''बोलने में बृहस्पति थे।
न्यायशास्त्र में 'अक्षपाद' थे।

इन्होंने अकलंक देव के ''न्यायविनिश्चय'' पर विद्वत्तापूर्ण विवरण लिखा है जो लगभग 2000 श्लोक प्रमाण है। सन् 1025 ई० में इन्होने पार्श्वनाथ चरित रचा जो अत्यन्त सरस और प्रौढ़ रचना है। अन्य भी कई एक ग्रंथ और स्तोत्र इन्होने बनाए हैं। इनके गुरु का नाम मति सागर था।

(iv) हेमचद्र

हेमचद्राचार्य (कलिकाल सर्वज्ञ) सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली विद्वान् तथा बहुसृजन ग्रंथकार थे। इनका जीवन काल 1089—1172 ई० सन् आंका जाता है। चालुक्य नरेश जय सिंह इनका पूर्ण भक्त था। इनके उत्तराधिकारी राजा कुमारपाल के यह गुरु थे। इनके द्वारा रचित व्याकरण ग्रंथो का जिक्र पीछे किया जा चुका है।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं पर इनका पूरा आधिपत्य था। उन्होने कोश रचकर अक्षय यशकीर्ति अर्जित की तथा अन्य

बहुमूल्य साहित्य का निर्माण करके मानव समाज की अनिर्वचनीय सेवा की।

क्रम सं०	नाम कोश	श्लोक संख्या
1	अभिधान चिंतामणि (स्वोपज्ञ टीका सहित)	10000
2	अभिधान चिंतामणि—परिशिष्ट	204
3	अनेकार्थ कोश	1828
4	निघण्टुशेष (वनस्पति विषयक)	396
5	देशीनाममाला (स्वोपज्ञ टीकासहित)	3500

इनकी अन्य विषयो मे कृतिया—

साहित्य अलकार—काव्यानुशासन
स्वोपज्ञ अलंकार चूडामणि
और विवेक वृत्ति सहित

छद—छदोनुशासन
छदश्चूड़ामणिटीका सहित

दर्शन—प्रमाणमीमासा (स्वोपज्ञवृत्ति सहित)
वेदाकुश (द्विजवदनचपेटा)

इतिहास काव्य—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित (महाकाव्य)
परिशिष्ट पर्व (स्थविरावलिचरित)

योग—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित

स्तुतिस्तोत्र—वीतराग स्तोत्र
अन्य योग
अन्ययोग व्यवच्छेदद्वात्रिंशका
अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशका
महदेव स्तोत्र

अन्य ग्रंथ--मध्यमवृत्ति सिद्धहेम शब्दानुशासन की टीका
रहस्यवृत्ति ,, ,, ,,
अर्हन्नामसमुच्चय
नामेयनेमि द्विसंधान काव्य
न्याय बलाबल सूत्र
बलाबलसूत्र—बृहद्वृत्ति
बाल भाषा व्याकरण सूत्र वृत्ति

(v) रामचन्द्र

यह हेमचद्राचार्य के पट्टशिष्य थे । संस्कृत नाट्यशास्त्र के महान् लेखक थे । यह एक प्रौढ कवि भी थे । इन्होंने लगभग 100 ग्रंथ लिखे जिनमें से 47 इस समय मुद्रित हो चुके है । इनके रचित नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं—

1 नल विलास	2 सत्य हरिश्चद्र
3 निर्भय भीम	4 कौमुदी मित्रानद

अपने शिष्य गुणचद्र के सहयोग से इन्होंने नाट्यदर्पण नाम का मुख्य नाट्य शास्त्र लिखा ।

कवितावलि तथा स्तोत्रों में मुख्य निम्न हैं—

1 युगादिदेव द्वात्रिंशका	2 प्रसाद द्वात्रिंशका
3 आदिदेव स्तव	4 नेमिस्तव

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर लिखित इनका भाष्य व्याकरण ग्रंथो में अमूल्य निधि है ।

(vi) जिनप्रभ सूरि

चतुर्दशी शताब्दी ई० में जिनप्रभ सूरि एक विख्यातनामा विद्वान् हुए । इन्होने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक मौलिक ग्रंथ और भाष्य लिखे । इनकी एक अति उपयोगी और आकर्षक कृति तीर्थ कल्प या विविध तीर्थ कल्प है जो जैन तीर्थस्थानों की एक बृहद्सूची है जिसमें तीर्थ का व्यौरा, नाम संस्थापक, नाम राजा जिसने इसकी

प्रतिष्ठा की इत्यादि का वर्णन है। तीर्थ में घटित होने वाली घटनाओं तथा समारोहों का तिथिक्रमानुसार वर्णन इसमें है। संस्कृत-प्राकृत मिश्रित गद्य-पद्य में यह ग्र थ लिखा गया है।

(vii) यशोविजय

श्वेताम्बर जैन परम्परा में हेमचद्राचार्य के पश्चात् यशोविजय जैसा सर्वशास्त्र पारंगत दूसरा विद्वान नही हुआ। इन्होने काशी में विद्याध्ययन किया था और नव्वन्याय के न केवल यह विद्वान ही थे किन्तु उसी शैली में सस्कृत मे उन्होने कई ग्रंथ भी रचे।

1 अनेकात व्यवस्था 2 ज्ञान बिन्दू 3 जैन तर्क भाषा
4 नय प्रदीप 5 नयोपदेश 6 नय रहस्य
7 न्याय खण्ड खाद्य 8 न्यायालोक 9 भाषा रहस्य
10 प्रमाण रहस्य 11 अध्यात्म मत परीक्षा
12 अध्यात्म सार 13 अध्यात्मोपनिषद्
14 आध्यात्मिकमत खण्डन 15 उपदेश रहस्य
16 ज्ञान सार 17 देव धर्म परीक्षा 18 गुरु तत्व निर्णय

निम्नलिखित ग्र थो पर इन्होने अमूल्य भाष्य लिखे हैं।

1 अष्ट सहस्री 2 शास्त्र वार्ता समुच्चय 3 स्याद्वाद मंजरी 4 योगविंशिका 5 योग सूत्र 6 कर्म प्रकृति
7 काव्य प्रकाश

गुजराती भाषा मे भी इन्होने प्रामाणिक ग्रंथ लिखे हैं। इनकी विचारसरणि बहुत ही परिष्कृत और संतुलित थी।

विशेष—

अनेकं प्राचीन जैन ग्र थो का अनुवाद हिंदी, गुजराती, ढु ढारी, अंग्रेजी जर्मन में हो चुका है।

राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रोत्साहन में जैनों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी में जैन विद्वानों की ओर से मौलिक ग्र थ भी लिखे गये हैं।

अध्याय

15(क) जैन कला और पुरातत्व

कला का ध्येय 'कला' है। कला के विकास में मानवीय जीवन के विकास की कहानी निहित है। सार यह निकला कि कला का ध्येय "जीवन का उत्कर्ष" है।

कला की परिभाषा "सत्यं, शिवं, सुन्दर," की जाती है। अर्थात् जो सत्य है, कल्याणकर है और सुन्दर है वही कला है। यह समस्त 'जैन कला' में सुघटित होते है।

किसी सभ्यता व सस्कृति में कला का विकास धीरे धीरे होता है। यह विकास जब चरमावस्था को पहुँचता है तो उनके भग्नावशेष उस महान् सस्कृति का दिग्दर्शन कराने में सहायक होते हैं। किसी संस्कृति के अतीत की गौरव गाथा उसके शेष रहे चिन्ह ही बतलाते हैं। यह स्थिति श्रमण संस्कृति या जैन संस्कृति पर ठीक लागू होती है भले ही भारतीय जन गणना में जैनी संख्या में "आटे मे नमक के बराबर" बचे हो या राजनीति, धर्मनीति और सामाजिक सगठन मे पिछड़ गये हो परन्तु उनके शानदार अतीत का, इन प्राचीन कला कृतियों द्वारा सिंहावलोकन करके आधुनिक युग के लोग इतना तो अवश्य मानेगे कि ये जैन लोग भी किसी समय भारत की चहुँदिशि समृद्धि में अग्र-सर रहकर सेवा रत रहे थे। इन्हें तुच्छ मत समझो।

"खण्डहर बता रहे हैं कि इमारत अज़ीम थी"

सर्व प्रथम हम जैन गुफाओ से अपने इस लेख को आरम्भ करते हैं—

जैन गुफाएँ

यह एकातवासी जैन मुनियो की साधना का आवश्यक अग बताया गया है। आरम्भ मे शिलाओं से आधारित प्राकृतिक गुफाओ का प्रयोग किया जाता रहा। ये ही जैन परम्परा के मान्य अकृत्रिम चैत्यालय कहे जा सकते है।

क्रमश: इन गुफाओ का विशेष सस्कार व विस्तार कृत्रिम साधनो से किया जाने लगा और जहा उसके योग्य शिलाएँ मिली उन्हे काट कर "गुफा-विहार तथा 'उपासना स्थान' बनाया जाने लगा। इन्हें कृत्रिम गुफाएँ कहते है जिनमें जैन कला खूब पनपी।

बराबर व नागार्जुनी पहाडियो की जैन गुफाएँ: —

ये पहाड़िया गया से 15 मील दूर पटना-गया रेलवे के 'बेला' नामक स्टेशन से 8 मील पूर्व की ओर है। 'बराबर' पहाड़ी मे चार तथा नागार्जुनी पहाडी में तीन गुफाए है। ये अशोक महान् और उसके पुत्र दशरथ द्वारा आजीवक सम्प्रदाय के साधुओ को दी गई थीं। यह सम्प्रदाय उस समय से 200 वर्ष पश्चात् जैन धर्म में विलीन हो गया क्योकि आजीवक मुनियों का क्रिया-कलाप जैन मुनियो से अधिकॉश मिलता था।

2 उदयगिरि व खण्डगिरि की गुफाएँ—

उड़ीसा में कटक के समीपवर्ती उदयगिरि खण्डगिरि नामक पर्वतों की गुफाएं, इनमे प्राप्त लेखों के आधार पर ई० पू० द्वितीय शताब्दी की सिद्ध होती है।

उदयगिरि की हाथी गुंफा नामक गुफा मे प्राकृत भाषा का एक सुविस्तृत लेख पाया गया है जिसमें कलिग सम्राट् खारवेल के बाल्य काल व राज्य के 13 वर्षों का चरित्र विधिवत् वर्णन है। यह लेख

अरिहंतों व सिद्धों को नमस्कार के साथ प्रारम्भ हुआ है और उसकी 12वी पक्ति में स्पष्ट उल्लेख है कि उन्होंने अपने राज्य के 12 वें वर्ष मे मगध पर आक्रमण करके वहां के शुंगवशीय राजा बृहस्पतिमित्र को पराजित किया और वहा से कलिग जिन की विख्यात मूर्ति वापिस अपने देश में लाया जिसे बहुत पहले नंदराजा अपहरण करके ले गया था। यह गुफा जैन-विहार रूप मे रही है। इसका नाम 'रानी गुफा' भी है।

उदयगिरि व खन्डगिरि मे कुल मिला कर 19 गुफाए है।

नीलगिरि नामक पहाडी में तीन गुफाएं और देखने मे आती हैं। विद्वानो का मत है कि इन गुफाओ मे चित्रण कला 'भरहुत' व साची के स्तूपो से अधिक सुन्दर है।

खण्डगिरि की 'नवमुनि' नामक गुफा में दसवी शती ई० का एक शिलालेख है जिसमे 'जैनमुनि शुभचद्र' का नाम आया,है। इससे प्रतीत होता है कि यह स्थान ई० पू० द्वितीय शती से लेकर दसवी शती ई. तक जैन धर्म का एक सुदृढ केन्द्र रहा था।

3 राजगिरि की सोन मन्डार गुफा—

प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई. का ब्राह्मी लिपि का एक लेख इस में मिलता है जिसके अनुसार आचार्यरत्न 'वैरदेव मुनि' ने यहाँ जैन मुनियो के निवास के लिए दो गुफाएँ निर्माण कराई। एक जैन मूर्ति तथा चतुर्मुखी जैन प्रतिमायुक्त एक स्तम्भ वहा अब भी विद्यमान है।

4 प्रयाग तथा कौसम (कौशाम्बी) की दो गुफाए—

इन मे दूसरी शति ई०पू० का शुङ्गकालीन लिपि मे एक लेख है। इस लेख में कहागया है कि इन गुफाओ को अहिच्छत्रा के "आषाढ़-सेन" ने काश्यपीय "अर्हन्तो" के लिये दान किया। भगवान् महावीर काश्यपगोत्रीय थे। सम्भव है उनके मुनि "काश्यपीय अर्हत्" कहलाये हो।

५. जूनागढ़ (काठियावाड़)

यहा "बाबा प्यारा मठ" के समीप कुछ गुफाए है जो तीन पंक्तियो में स्थित है। एक इनमें "चैत्यगुफा" है। इन जैन गुफाओं में एक गुफा ध्यान देने योग्य है जो द्वितीय शती ई०पू० अर्थात् "क्षत्रप राजाओ" के काल की प्रतीत होती है। इस गुफा मे जो खण्डित लेख मिला है उसमें क्षत्रप राज्यवश का तथा "चष्टन" के प्रपौत्र व 'जयदामन' के पौत्र "रुद्रसिंह प्रथम" का उल्लेख है। यह लेख न पढे जाने पर भी उसमे जो केवल-ज्ञान, जरामरण से मुक्ति आदि शब्द पढे गये है, उनसे तथा गुफा में अकित स्वस्तिक, भद्रासन, मीन युगल आदि प्रख्यात जैन मागलिक चिह्नो के चित्रित होने से, वे निश्चय ही जैन साधुओ से सम्बधित है। सम्भवतया "अतिम अग ज्ञान के ज्ञाता धरसेन आचार्य" ने यहाँ निवास किया हो और भूतबलि और पुष्पदत को यही "षट्खण्डागम" का विशेष ज्ञान-दान दिया हो।

इसके समीप ही "ढंक" नामक स्थान पर दो गुफाए है। इन में ऋषभ, पार्श्व, महावीर आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाए है। जैन साहित्य में ढक पर्वत का अनेक स्थानो पर उल्लेख आया है। पादलिप्त सूरि के शिष्य "नागार्जुन" यही के निवासी कहे गये हैं।

६. मध्य प्रदेश में उदयगिरि की जैन गुफाएं :—

यह उदयगिरि इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगर से उत्तर पश्चिम की ओर वेतवा नदी के उस पार दो तीन मील की दूरी पर है। इस पहाड़ी पर पुरातत्व विभाग द्वारा अकित 20 गुफाए व मंदिर हैं। इन में "पहली" तथा "बीसवी, ये दो स्पष्ट रूप से जैन गुफाएं है। पूर्व दिशावर्ती 20वीं गुफा में पार्श्वनाथ तीर्थंकर की अति सुदर मूर्ति विराजमान है। खण्डित होने पर भी नागफण अब भी इसकी कलाकृति को प्रकट कर रहा है। यहां एक "संस्कृत पद्यात्मक लेख'

खुदा हुआ है, जिसके अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुप्त स० 106 में (ई० सन् 426, कुमारगुप्त काल) में कार्तिक कृष्णा पंचमी को 'आचार्य भद्रान्वयी गोशर्म मुनि" के शिष्य "शकर" द्वारा की गई थी। इन शकर ने अपना जन्मस्थान कुरुदेश बताया है।

7 चंद्रगिरि गुफा (श्रवण बेल गोल) :—

चद्रगिरि पहाड़ी पर यह गुफा स्थित है। सम्राट् चंद्र गुप्त मौर्य ने, आचार्य भद्रबाहु का शिष्यत्व स्वीकार करने के पश्चात्, साधुवेष मे यहाँ तपस्या की थी।

इस गुफा के समीप एक "भद्रबाहु की गुफा" भी है। कहा जाता है कि यहा श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी ने देहोत्सर्ग किया था। यहाँ इनके चरण-चिह्न अकित हैं और पूजित होते हैं। दक्षिण भारत में यही सबसे प्राचीन जैन गुफा सिद्ध होती है।

8 महाराष्ट्र प्रदेश में गुफा-समूह—

उस्मानाबाद से पूर्वोत्तर दिशा में लगभग 12 मील की दूरी पर पर्वत मे एक प्राचीन गुफा समूह है इनमें मुख्य गुफा दूसरी है जिसमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की भव्य प्रतिमा विराजमान है। तीसरी व चौथी गुफाओ मे भी जिनमे प्रतिमाएँ विराजमान है। तीसरी गुफा के स्तम्भों की बनावट कलापूर्ण है।

बर्जेस साहब के मत से ये गुफाएं अनुमानत: ई० पू० 500-650 के बीच की है।

9 सित्तनवासल (सिद्धानाँवास:)—

सित्तनवासल जैन मुनियों का एक प्राचीन केंद्र पुडुकोटाई से 9 मील दूर स्थान है। यह "सित्तनवासल नाम सिद्धानावास: से अपभ्रष्ट होकर बना प्रतीत होता है। यहाँ के विशाल शिला टीलो में

बनी हुई एक जैन गुफा बड़ी महत्वपूर्ण है। यहाँ एक ब्राह्मी लिपि का लेख भी मिला है जो ई. पू. तीसरी शती का (अशोक कालीन) प्रतीत होता है। इस लेख में स्पष्ट लेख है कि गुफा का निर्माण जैनो के निमित्त कराया गया था। गुफा बड़ी विशाल 100 × 50 फुट है इसमें अनेक कोठरिया हैं जिनमें समाधि शिलाएँ भी बनी हुई हैं। ये शिलाएँ 6′ × 4′ है। वास्तुकला की दृष्टि से तो गुफा महत्वपूर्ण है ही किन्तु इससे भी अधिक महत्व इसकी चित्रकला का है जिसका विवरण आगे चित्रकला शीर्षक में दिया जाएगा। इस गुफा का संस्कार पल्लव नरेश महेंद्रवर्मन (8वी शती ई.) के काल में हुआ।

10 दक्षिण भारत मे बादामी की जैन गुफा—

इसका निर्माणकाल अनुमानत: सातवी शती का मध्य भाग है। यह गुफा 16 फुट गहरी तथा 31 × 19 फुट लम्बी चौड़ी है। पीछे की ओर मध्य भाग में देवालय है, और तीनो तरफों की दीवारो मे मुनियों के निवास के लिए कोष्ठक बने हुए हैं। स्तम्भो की आकृति बम्बई की एलीफेंटा की गुफाओ के समान है।

यहाँ चमर धारियो सहित महावीर तीर्थंकर की मूल पद्मासन मूर्ति के अतिरिक्त दीवालो व स्तम्भों पर भी जिनमूर्तिया खुदी हुई हैं ऐसा माना जाता है कि राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (8वी शती) ने राज्य त्याग कर व जैन दीक्षा लेकर इसी गुफा में निवास किया था। गुफा के बरामदो में एक ओर पार्श्वनाथ व दूसरी ओर बाहुबलि की लगभग 7½ फुट ऊँची प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

11. ऐहोल गुफाए:—

बादामी ताल्लुके में स्थित 'ऐहोल' नामक ग्राम के समीप पूर्व और उत्तर की ओर ये गुफाएं हैं जिनमें जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। बाई भित्ति में पार्श्वनाथ की मूर्ति है, जिसके एक ओर नाग और दूसरी ओर नागिन स्थित है। दाहिनी ओर चैत्य वृक्ष के नीचे जिन मूर्ति

बनी है। इस गुफा की सहस्रफणो वाली पार्श्वनाथ की प्रतिमा कला की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। अन्य जैन आकृतियां व चिन्ह भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। सिंह, मकर व द्वारपालों की आकृतिया भी कलापूर्ण हैं और एलिफेंटा कलाकृतियों का स्मरण कराती है। गुफाओ से पूर्व की ओर वह 'मेघुटी' नामक जैन मन्दिर है जिसमे 'चालुक्य नरेश पुलकेशी' 'शक सं० 556' (ई० 634) का उल्लेख है। यह शिलालेख अपनी सस्कृत काव्यशैली के विकास में भी अपना स्थान रखता है। इस लेख के लेखक रवि कीर्ति ने अपने को काव्य के क्षेत्र मे कालिदास और भारवी की कीर्ति को प्राप्त कहा है। 'कालिदास व भारवि के काल-निर्णय में यह लेख बड़ा सहायक हुआ है, क्योकि इसी से उनके काल की अतिम सीमा प्रामाणिक रूप से निश्चित हुई है।

ऐहोल सम्भवत: 'आर्यपुर' का अपभ्रष्ट है।

12. एलोरा:—

यह स्थान यादवनरेशो की राजधानी देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) से लगभग 16 मील दूर है और वहाँ का शिलापर्वत अनेक गुफा मदिरो से अलकृत है। यहां 'कैलाश' नामक शिव मदिर है जिसकी योजना और शिल्प कला इतिहास-प्रसिद्ध है। यहा बौद्ध, हिंदू व जैन तीनो सम्प्रदायो के शैल मदिर बड़े सुन्दर प्रणाली में बने हुए है।

यहा पाच जैन गुफाए है जिनमे से तीन—'छोटा कैलाश, इन्द्र सभा, जगन्नाथ सभा'—कला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। 'छोटा कैलाश' एक ही पाषाण शिला को काट कर बनाया गया है। मंदिर 80फुट चौडा व 130 फुट लम्बा है मण्डप लगभग 36 फुट लम्बा चौडा है और उसमें 16 स्तम्भ है।

'इन्द्रसभा' नामक गुफामदिर में 32 फुट ऊंचा ध्वजस्तम्भ है।

पीछे जाने पर दुतल्ला सभागृह मिलता है जो इन्द्रसभा के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों तलो में प्रचुर चित्रकारी बनी हुई है।ऊपर की शाला 12 सुखचित खम्भों से अलंकृत है। शाला के दोनो ओर भगवान् महावीर की विशाल प्रतिमाएं हैं और पास ही कक्ष में इन्द्र और हाथी की मूर्तियां बनी हुई हैं। इन्द्र सभा की एक बाहरी दीवाल पर 'पार्श्वनाथ की तपस्या व कमठ द्वारा उनपर किये गये उपसर्ग का' बहुत सुन्दर व सजीव उत्कीर्णन किया गया है। पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हैं। दक्षिण की दीवाल पर लताओ से लिपटी 'बाहुबलि की प्रतिमा' उत्कीर्ण है। अनुमानतः इन्द्र सभा की रचना तीर्थंकर के जन्म कल्याणक उत्सव की स्मृति में हुई है।

इन्द्र सभा के समीप ही 'जगन्नाथ सभा है, जिसका विन्यास इन्द्र सभा के सदृश ही है।

इन गुफाओ का निर्माणकाल 800 ई० के लगभग माना जाता है।

13. दक्षिण त्रावणकोर:—

यह त्रिवेन्द्रम नगरकोइल मार्ग पर स्थित कुजीपुर नामक ग्राम से पाचमील उत्तर की ओर पहाड़ी पर है जो अब भी भगवती मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। शिला के गुफा भाग के दोनों प्रकोष्ठो मे विशाल पद्मासन जिन मूर्तियाँ सिहासन पर प्रतिष्ठित हैं। शिला का समस्त भाग (अंदर-बाहरी) जैन तीर्थंकरों की कोई 30 उत्कीर्ण प्रतिमाओं से अलंकृत है। कुछ के नीचे केरल की प्राचीन लिपि 'वत्तजेत्तु' में लेख भी है जिनसे उस स्थान का जैनत्व तथा निर्मिति काल 9वीं शती सिद्ध होता है।

14. अंकाई-तंकाई गुफा-समूह:—

येवला ताल्लुके में मनमाड रेलवे जंकशन से नौ मील दूर अंकाई

नामक स्टेशन के समीप स्थित है। तीन हजार फुट ऊंची पहाड़िया में सात गुफाएं हैं, जो आकार में छोटी होने पर भी कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पहली और दूसरी गुफा दुतल्ली है। तीसरी गुफा के मण्डप की छत पर 'कमल' की आकृति बड़ी सुन्दर है। उसकी पंखुड़ियाँ चार कतारो में दिखाई गई हैं और उन पखुड़ियों पर देवियाँ वाद्य सहित नृत्य कर रही हैं। देव-देवियों के अनेक युगल वाहनों पर आरूढ़ हैं। स्पष्टतः यह दृश्य तीर्थंकर के जन्मकल्याणक के उत्सव का है। गर्भगृह में शान्तिनाथ व उनके दोनों ओर पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ हैं। चौथी गुफा का बरामदा 30′×8′ है। बरामदे के स्तम्भ पर एक लेख भी है जो पढ़ा नही जा सकता, किंतु लिपि पर से 11वी शती का अनुमान किया जाता है। शेष गुफाएं टूटी फूटी अवस्था मे हैं।

15. ग्वालियर की जैन गुफाएः—

यद्यपि गुफा युग बहुत पूर्व समाप्त हो चुका था तो भी जैन लोग 15 वी शती तक गुफाओ का निर्माण कराते रहे। इसका उदाहरण है 'तोमर राजवंश' कालीन ग्वालियर की जैन गुफाएं।

जैनियो ने 15वी शती तक समस्त पहाड़ी को गुफामय कर दिया। 'इन गुफाओ की विशेषता है इनकी संख्या, विस्तार व मूर्तियों की विशालता'। गुफाएँ बहुत बडी- बड़ी हैं। उनमें तीर्थंकरों की 60 फुट ऊंची प्रतिमाएं देखने को मिलती है

उर्वाही द्वार पर प्रथम गुफा समूह में लगभग 25 विशाल तीर्थंकर मूर्तियाँ है, जिनमे एक 57 फुट ऊंची है। आदिनाथ व नेमिनाथ की 30 फुट ऊंची मूर्तियाँ है। अन्य छोटी छोटी प्रतिमाए भी है।

आधा मील ऊपर दूसरा गुफा समूह है जहाँ 20-30 फुट तक की

अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बावड़ी के समीप एक गुफा कुन्ज में पार्श्वनाथ की 20 फुट ऊंची पद्मासन मूर्ति तथा अन्य तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रायुक्त अनेक विशाल मूर्तियाँ हैं । यहां की प्रधान मूर्ति 60 फुट ऊंची है।

इन गुफा मन्दिरो मे अनेक शिलालेख भी मिले हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन गुफाओ की खुदाई सन् 1441 से लेकर सन् 1474 तक 33 वर्षों मे पूर्ण हुई। इतिहास की दृष्टि से इन गुफाओ का बड़ा महत्व है।

इनके अतिरिक्त सैंकड़ो जैन गुफाएं देश भर मे यत्र तत्र बिखरी हुई पाई जाती हैं जो पुकार पुकार कर जैनो की ऊंची शान की कहानी बयान कर रही हैं। और बता रही हैं कि भारतीय सस्कृति को पुष्पित और पल्लवित करने में जैनो का कितना सशक्त योग दान रहा है।

अध्याय

15(ख)

जैन कला और पुरातत्व

जैन मन्दिर—

जैन वास्तु कला ने मन्दिरो के निर्माण में ही अपना चरम उत्कर्ष प्राप्त किया। इन मन्दिरों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण ग्यारहवी शती ई० व उसके पश्चात् काल के उपलब्ध है।

1 लोहानीपुर·—

प्राचीनतम जैन मन्दिर के चिन्ह बिहार में, पटना के समीप लोहानीपुर मे, पाये गये हैं, जहाँ कुमराहर और बुलदीबाग की मौर्य-कालीन कला-कृतियो की परम्परा के प्रमाण मिले हैं। यहा एक जैन मन्दिर की नीव मिली है। यह मन्दिर 8-10 फुट वर्गाकार था। यहां की ईटे मौर्यकालीन सिद्ध हुई है। यहाँ से एक मौर्यकालीन रजत सिक्का तथा दो मस्तकहीन जिनमूर्तियां मिली है, जो अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित है।

2 ऐहोल:—

वर्तमान में सबसे प्राचीन जैन मन्दिर जिसकी रूपरेखा सुरक्षित है व निर्माण काल भी निश्चित है, वह है दक्षिण भारत में बादामी के समीप 'ऐहोल का मेघुटी' नामक जैन मन्दिर जो कि वहां से उपलब्ध शिलालेखानुसार शक संवत् 556 (ई 634) में पश्चिमी चालुक्य नरेश पुलकेशी द्वितीय के राज्यकाल में 'रविकीर्ति' द्वारा बनाया गया था। यही रविकीर्ति मन्दिर-योजना मे ही नही वरन् काव्य-योजना मे भी अति प्रवीण और प्रतिभाशाली थे। यह मन्दिर अपने पूर्ण

अध्याय

15(ग)

जैन कला और पुरातत्व

जैन स्तूपः—

मथुरा के 'कंकाली टीले की खुदाई से जैन स्तूप का जो भग्नावशेष प्राप्त हुआ है, उससे उसके मूलविन्यास का स्वरूप प्रकट हो जाता है। स्तूप लगभग गोलाकार था जिसका व्यास 47 फुट पाया जाता है। यह स्तूप छोटी बडी ईंटो से बनाया गया था। पूरा स्तूप कैसा था, इसका कुछ अनुमान बिखरी हुई प्राप्त सामग्री के आधार पर लगाया जा सकता है। इसके अनेक प्रकार की चित्रकारी युक्त पाषाण मिले हैं। दो ऐसे 'आयागपट' मिले हैं, जिनपर स्तूप की पूर्ण आकृतियाँ चित्रित हैं।

स्तूप की गुम्मट पर छः पक्तियो 'का एक लेख है' जिस मे अर्हंत वर्द्धमान को नमस्कार के पश्चात् कहा गया है कि 'श्रमण-श्राविका आर्या लवणशोभिका नामक गणिका की पुत्री श्रमण-श्राविका वासु गणिका ने जिनमन्दिर मे अर्हत की पूजा के लिये अपनी माता, भगिनी तथा दुहिता-पुत्री सहित निर्ग्रथो के अरहन्त आयतन में अरहंत का देवकुल (देवालय) आयाग तथा, प्रपा (प्याऊ) तथा शिलापट प्रतिष्ठित कराये।'

यह शिलापट अक्षरों की आकृति व चित्रकारी द्वारा अपने को कुषाण कालीन (पहली-द्वितीय शताब्दी) सिद्ध करता है।

'विवंधतीर्थ कल्प' में लिखा है कि इस स्तूप का भगवान् पार्श्व नाथ के समय (877-777 ई० पू०) मे जीर्णोद्धार कराया गया।

रूप मे सुरक्षित नही रह सका । इसका बहुत कुछ अश ध्वस्त हो चुका है । तथापि इसका इतना भाग फिर भी सुरक्षित है कि जिससे उसकी योजना व शिल्प का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

-मन्दिर शैली-

गुप्त व चालुक्य युग से पश्चात्कालीन वास्तुकला की शिल्प शास्त्रो मे तीन शैलिया निर्दिष्ट की गई हैं.—

1. नागर
2. द्राविड
3. वेसर

सामान्यत· 'नागर शैली' उत्तर भारत मे हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक प्रचलित हुई ।

'द्राविड शैली दक्षिण में कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक तथा 'वेसर' मध्यभारत में विन्ध्यपर्वत और कृष्णा नदी के बीच विस्तृत हुई । किन्तु यह प्रादेशिक विभाग कडाई से पालन किया गया नही पाया जाता । प्रायः सभी शैलियो के मन्दिर सभी प्रदेशो में पाये जाते है, तथापि आकृति-वैशिष्टय को समझने के लिये यह शैली-विभाजन सिद्ध हुआ है ।

आगामी काल के हिन्दू व जैन मन्दिर इन्ही शैलियो, विशेषत: नागर व द्रविड शैलियों, पर बने पाये जाते है ।

ऐहोल का मेघुटी जैन मन्दिर, जिसका पीछे वर्णन किया गया है, द्राविड शैली का सर्व प्राचीन मन्दिर कहा जा सकता है । इस शैली का विकास दक्षिण के नाना स्थानो मे पूर्ण अथवा ध्वस्त जैन मन्दिरों में देखने को मिलता है ।

3. हुवच.—

तीर्थहल्लि के समीप 'हुवच' अथवा हुमच एक अति प्राचीन जैन केंद्र रहा है। ई० सन् 897 के एक लेख मे वहाँ के मन्दिर 11वी शती मे 'वीर सातर' आदि सातरवशी राजाओ द्वारा निर्मापित पाये जाते है। इनके द्राविडशैली की अलकरण रीति तथा सुन्दरता से उत्कीर्ण स्तम्भो की सत्ता पाई जाती है। जैन मठके समीप भगवान् आदिनाथ का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मन्दिर मे दक्षिण भारतीय शैली की 'कास्य मूर्तियो' का अच्छा सग्रह है। इसी मन्दिर के समीप बाहुबलि मन्दिर टूटी फूटी अवस्था मे विद्यमान है।

तीर्थहल्लि के मार्ग पर 3000 फुट ऊची 'गुड्ड' नामक पहाडी पर एक प्राचीन जैन तीर्थ सिद्ध होता है। एक 'पार्श्वनाथ मन्दिर' अब भी इस पहाडी पर शोभायमान है जिस मे भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति पर नाग के दो लपेटे स्पष्ट दिखाई देते है जो सिर पर सप्तमुखी छाया किये हुए है।

पहाड़ी से उतरते हुए जगह जगह जैन मन्दिरो के ध्वसावशेष मिलते है। तीर्थकरो की सुन्दर मूर्तियाँ व चित्रकारीयुक्त पाषाणखण्ड प्रचुरता से यत्र-तत्र बिखरे दिखाई देते है, जिससे इस स्थान का प्राचीन समृद्ध इतिहास आँखो के सामने झूल जाता है।

4. लकुन्डी.—

धारवाड जिले मे, गडग रेलवे स्टेशन से सात मील दक्षिण पूर्व की ओर लकुन्डी (लोक्कि गुन्डी) नामक ग्राम है जहाँ दो सुन्दर जैन मन्दिर है इनमे के बडे मन्दिर में सन् 1172 ई० का शिलालेख है। यहाँ भगवान् महावीर की बडी सुन्दर मूर्ति विराजमान थी जो इधर छ वर्षों से दुर्भाग्यत: विलुप्त हो गई है । भीतरी मण्डप के द्वार

पर पूर्वोक्त लेख खुदा हुआ है । ऊपर पद्मासन जिन मूर्ति है और उसके दोनो ओर चद्र-सूर्य दिखाये गये है। लकुन्डी के इस जैन मन्दिर ने द्राविड वास्तु-शिल्प को बहुत प्रभावित किया है।

5. जिननाथपूर व हलेबीड.—

हायसल राजवश के काल में (13वीं शती) द्राविड़ कला में 'अलकरण रीति' में समुन्नति हुई। पाषाण पर कारीगरो की छैनी अधिक कौशल से चली है जिसके दर्शन हमे जिननाथपुर तथा हलेबीड के जैन मन्दिरों में होते है।

'जिननाथपुर, श्रवण बेलगोल मे एक मील उत्तर की ओर है। ग्राम का नाम ही बता रहा है कि यहाँ जैन मन्दिरों की प्रख्याति रही है। यहाँ का शान्तिनाथ मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इसे 'रेचिमय्य' नामक व्यक्ति ने बनवाकर सन् 1200 के लगभग सागरनदि सिद्धात देव को सौपा था। नवरग के स्तम्भो पर बडी सुन्दर व बारीक चित्रकारी की गई है। छतो की खुदाई भी देखने योग्य है। बाहिरी दीवारो पर रेखा चित्रो की खुदाई की गई है। इन पर यक्ष यक्षियो व तीर्थकरो की प्रतिमाए भी सौदर्यपूर्ण बनी है।

हल्लेबीड मे एक ही घेरे के भीतर तीन जैन मन्दिर हैं जिनमें पार्श्वनाथ मन्दिर उल्लेखनीय है। छत की चित्रकारी उत्कृष्ट है जो 12 अति सुन्दर आकृतिवाले काले पाषाण के स्तम्भो पर आधारित है। इन स्तम्भो की रचना, खुदाई और सफ़ाई देखने योग्य है। उनकी घुटाई तो ऐसी की गई है कि उसमे आज भी दर्शक दर्पण के समान अपना मुख देख सकता है। पार्श्वनाथ की 12 फुट ऊंची विशाल मूर्ति सतफणी नाग से युक्त है। मूर्ति मुद्रा सच्चे योगी की ध्यान व शान्ति की छटा को लिये हुए है। शेप दो आदिनाथ व शान्तिनाथ मन्दिर भी अपना सौदर्य रखते है।

ये सभी मन्दिर 12वी शती की कृतियाँ हैं।

6. मूडबिद्री का चद्रनाथ मन्दिर:—

होयसल काल के पश्चात् विजयनगर राज्य का युग प्रारम्भ होता है, जिसमें द्राविड़ वास्तु कला का कुछ और भी विकास हुआ। इस काल की जैन कृतियो के उदाहरण गनीगिति, तिरुमल्लाइ, तिरुपरुत्ति कुण्डरम्, तिरप्पनमूर, मूडबिद्री आदि स्थानो में प्रचुरता से पाये जाते है। इनमें सब से प्रसिद्ध मूडबिद्री का चद्रनाथ मन्दिर है जिसका निर्माण 14वी शती मे हुआ। यह मन्दिर एक घेरे के भीतर है। प्रागण में अति सुन्दर मानस्तम्भ के दर्शन होते है। मन्दिर में लगातार तीन मन्डपशालाए है—तीर्थकर मण्डप, गद्दी मण्डप व चित्र मण्डप। स्तम्भ बडे स्थूल और 12 फुट ऊंचे है जो उत्कीर्ण है। उन पर कमलदलो की खुदाई असाधारण सौष्ठव और सावधानी से की गई है।

7. जैन विहार (पहाडपुर)

जैन विहार का सर्वप्रथम उल्लेख पहाडपुर (जिला राजशाही-वर्तमान बगला देश) के उस ताम्रपत्र के लेख में मिलता है जिसमें पचस्तूप निकाय या कुल के निर्ग्रंथ श्रमणाचार्य गुहनदि तथा उनके शिष्य अनुशिष्यो से अधिष्ठित बिहार मन्दिर मे अर्हतो की पूजा अर्चा के निमित्त अक्षयदान दिये जाने का उल्लेख है। यह गुप्त स० 159 (ई० 472) का है। लेख में इस बिहार की स्थिति 'बट-गोहाली में बताई गई है। यह विहार वही है जो पहाडपुर की खुदाई से प्रकाश मे आया है। सातवी शती के पश्चात् किसी समय इस बिहार पर बौद्धो का अधिकार हो गया और वह 'सोमपुर विहार' के नाम से प्रख्यात हुआ, किन्तु 7वी शती मे चीनी यात्री 'ह्यूनसाग' ने अपने यात्रा-वर्णन मे इस बिहार का कोई उल्लेख नही किया,

जिससे स्पष्ट है कि उस समय तक वह बौद्ध-केन्द्र नही बना था। अतः उपरोक्त 'ताम्रपट लेख' से यह सिद्ध होता है कि 'यह पाचवी शती में जैन विहार था और इम स्थान का प्राचीन नाम वट-गोहाली (वट-गुफा-आवली) था'। कहा जा चुका है कि षट्खण्डागम के प्रकाण्ड विद्वान् टीकाकार, वीर सेन और जिनसेन इसी पश्चस्तूपान्वय के आचार्य थे और यह जैन विहार महान् विद्या-केन्द्र रहा था।

8 देवगढ (मध्य भारत): —

देवगढ ललितपुर जिले के अतर्गत ललितपुर रेलवे स्टेशन से 19 मील तथा जाखलौन स्टेशन से 19 मील दूर वेतवा नदी के तट पर है। देवगढ की पहाडी कोई डेढ मील लम्बी व छ फर्लांग चौडी है। इनमे अधिकाँश जैन मन्दिर है जिनकी सख्या 31 है। इनमे मूर्तियो, स्तम्भो, दीवालो, शिलाओ आदि पर शिला लेख भी पाये जाते है जिनसे सिद्ध होता है कि ई० 8वी शती से 12वी शती के बीच इनका निर्माण हुआ।

सब से बड़ा बारह नम्बर का शान्ति नाथ मदिर है, जिसके गर्भ गृह में 12 फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है। एक स्तम्भ पर भोजदेव के काल (वि० स० 919 मुताबिक ई० 862) का एक लेख भी उत्कीर्ण है। लेख में वि० स० के साथ साथ शक स० 784 का भी उल्लेख है। बडे मण्डप में बाहुबलि की मूर्ति है, यही मदिर यहाँ का मुख्य देवालय है।

पाँचवाँ मदिर सहस्रकूट चैत्यालय है जो बहुत कुछ बचा हुआ है। उसके कूटो पर कोई 1008 जिन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है।

'पुरातत्व विभाग की रिपोर्ट के अनुसार देवगढ़ से कोई 200 शिलालेख मिले है, जिनमें से 60 में उनका लेखन-काल भी अंकित है,

जिनसे वे वि० सं० 919 से 1876 तक के पाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र का महत्व 19वी शत तक बना रहा।

9 खजुराहो:—

महोबा से 34 मील दक्षिण की ओर खजुराहो स्थित है। मध्य भारत का यह दूसरा देवालय नगर है। यहाँ जैन मदिरो मे तीन विशेष उल्लेखनीय है—पार्श्वनाथ, आदिनाथ और शान्तिनाथ। इन मे पार्श्वनाथ मंदिर सब मे बड़ा है।

खजुराहो के जैन मदिरो की विशेषता यह है कि इन में मण्डप की अपेक्षा शिखर की रचना का ही अधिक महत्व है।

ग्वालियर राज्य मे ग्यारसपुर मे भी एक भग्न जैन मदिर का मण्डप विद्यमान है जो अपने विन्यास व स्तम्भो की रचना आदि में खजुराहो के घण्टाई मण्डप के ही सदृश है।

10. सुवर्णगिरि (सोनागिरि), मुक्तागिरि, कुण्डलपुर:—

मध्यप्रदेश में तीन और जैन तीर्थ है जहाँ पहाडियो पर अनेक प्राचीन मदिर बने हुए है। बुन्देलखड मे दतिया के समीप सुवर्णगिरि (सोनागिरि) है जहा 100 छोटे बडे जैन मदिर है।

मुक्तागिरि तीर्थ क्षेत्र बैतूल के अंतर्गत है। अति सुन्दर पहाडी की घाटी के समतल भाग में कोई 20-25 जैन मंदिर है जिनके बीच लगभग 60 फुट ऊँचा जलप्रपात बहता है। अंग्रेज इतिहासकार जेम्स फर्गुसन ने लिखा है:—

'समस्त भारत में इसके सदृश दूसरा स्थान पाना दुर्लभ है, जहां प्रकृति की शोभा का वास्तुकला के साथ ऐसा सुन्दर सामन्जस्य हुआ हो'।

मध्यप्रदेश का तीसरा जैन तीर्थ दमोह के समीप कुण्डलपुर

नामक स्थान है, जहाँ एक कुण्डलाकार पहाड़ी पर 25-30 जैन मदिर बने हुए है। पहाडी के बीच एक घाटी मे बना हुआ महावीर का मंदिर अपनी विशालता, प्राचीनता, व मान्यता के लिये विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ बडे बाबा महावीर की विशाल मूर्ति होने के कारण यह 'बडे बाबा का मदिर' कहलाता है।

मध्यप्रदेश के जिला नगर खरगोल से पश्चिम की ओर 'ऊन' नामक एक ग्राम में तीन चार प्राचीन जैन मदिर है। कुछ प्रतिमाओं पर लेख है जिनमे सम्वत् 1258 व उसके आस पास का उल्लेख है।

राजपूताने के जैन मन्दिर

11. बडली:—

अजमेर के बडली ग्राम से एक स्तम्भ खण्ड मिला है जिसे वहाँ के भैरोंजी के मदिर का पुजारी तमाखू कूटने के काम में लाया करता था 'यह षट्कोण स्तम्भ का खण्ड रहा है जिसके तीन पहलू एक इस पाषण-खण्ड में सुरक्षित हैं और उन पर 13"×10½" स्थान में एक लेख खुदा हुआ है। इसकी तिथि विद्वानो के मतानुसार अशोक की लिपियो से पूर्व कालीन है। भाषा प्राकृत है और उपलब्ध लेख खण्ड पर से इतना स्पष्ट पढा जाता है कि वीर भगवान् के लिये 84वे वर्ष में मध्यमिका नगरी में कुछ निर्माण कराया गया'।

12. ओसिया:—

जोधपुर से पश्चिमोत्तर दिशा में 50 किलोमीटर की दूरी पर ओसिया रेलवे स्टेशन के समीप ही ओसिया नामक ग्राम के बाहरी भाग मे अनेक प्राचीन जैन मदिर हैं, जिनमे 'महावीर मंदिर' अब भी तीर्थक्षेत्र माना जाता है। इसकी शिखर आदि रचना 'नागर शैली' की है। यहाँ शिलालेख में दर्ज है:—

(क) हस्तिशाला (25'×30')—इस में छः स्तम्भ हैं। हाथिया पर आरूढ विमलशाह और उनके वशजो की मूर्तियाँ है जिन्हे उनके वशज पृथ्वी पाल ने 1150 ई० के लगभग बनवाया था।

(ख) आगे मुख्यमन्डप (25' फुट×25' फुट) है।

(ग) आगे देवकुलो की पक्ति व मामिति और प्रदक्षिणा मण्डप है, जिसका ऊपर वर्णन आ चुका है। तत्पश्चात् मुख्य मन्दिर का रग मण्डप या सभा-मन्डप मिलता है, जिमका गोल शिखर 24 स्तम्भो पर आधारित है। छत की पद्मशिला के मध्य में बने हुए लोलक की कारीगरी अद्वितीय और कला के इतिहास में विख्यात है। उत्तरोत्तर छोटे होते हुए चद्रमन्डलो युक्त कंचुलक कारीगरी सहित 16 विद्याधरियो की आकृतिया अत्यन्त सुन्दर है।

इस रग मण्डप की समस्त रचना व उत्कीर्णन को देखते हुए दर्शक को ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे मानो वह किसी दिव्य लोक में आ पहुँचा हो। रगशाला से आगे चलकर नवचौकी मिलती है, जिसका यह नाम उसकी छत के विभागो के कारण पडा है। इससे आगे गूढ मण्डप है। वहा से मुख्य प्रतिमा का दर्शन-वन्दन किया जाता है। इसके सम्मुख वह मूल गर्भ-गृह है, जिसमें भगवान् ऋषभनाथ की धातु प्रतिमा विराजमान हैं।

(2) लूण-वसही:—

लूण-वसही के नाम से विख्यात नेमिनाथ भगवान् का यह मन्दिर विमल-वसही के सम्मुख ही स्थित है। इमका निर्माण सन् 1232 ई० मे बघेल वशी राजा वीर धवल के दो मत्री-भ्रात 'तेजपाल और वस्तु पाल' ने किया था। तेजपाल मत्री के पुत्र 'लूण सिह' की स्मृति में बनवाये जाने के कारण इस मन्दिर का नाम लूण-वसही प्रसिद्ध हुआ। इस मन्दिर का विन्यास व रचना प्राय: आदिनाथ मन्दिर के सदृश

है। इस में विशेषता यह है कि इसकी हस्तिशाला इस प्रांगण के बाहर नही, किन्तु भीतर ही है। रग मण्डप, नवचौकी, गूढ-मण्डप और गर्भ की रचना पूर्वोक्त प्रकार की है। कितु यहा रग मण्डप के स्तम्भ कुछ अधिक ऊँचे है और प्रत्येक स्तम्भ की बनावट व कारीगरी भिन्न है। मण्डप की छत कुछ छोटी है किन्तु इसकी रचना व उत्कीर्णन का सौन्दर्य 'विमल-वसही' से किसी प्रकार कम नही। इसके रचना सौंदर्य की प्रशसा करते हुए फर्गुसनसाहब ने कहा है:—

'कि यहां संगमरमर पत्थर पर जिस परिपूर्णता, जिस लालित्य व जिस सतुलित अलंकरण की शैली से काम किया गया है, उसकी कही भी उपमा मिलना कठिन है।'

इन मदिरो मे संगमरमर की कारीगरी को देखकर बडे-बडे कलाकार विशारद आश्चर्य-चकित होकर दाँतो तले अगुली दबाये बिना नही रहते। यहा भारतीय शिल्पियो ने जो कला-कौशल व्यक्त किया है, उससे कला के क्षेत्र में भारत का मस्तिष्क सदैव गर्व से ऊँचा उठा रहेगा।

कारीगर की छैनी ने यहाँ काम नही दिया। सगमरमर को घिस-घिस कर उनमें वह सूक्ष्मता व कॉच जैसी चमक व पारर्दिशता लाई गई है, जो छैनी द्वारा लाई जानी असम्भव थी। 'कहा जाता है कि इन कारीगरो को घिस कर निकाले हुए सगमरमर के चूर्ण के प्रमाण से वेतन दिया जाता था'। तात्पर्य यह कि इन मन्दिरों के निर्माण से 'एच० जिम्मर' के शब्दो मे —

'भवन ने अलन्कार का रूप धारण कर लिया है, जिसे शब्दो में समझाना असम्भव है'

(3) पित्तलहर:—

लूण-वसही से पीछे की ओर पित्तलहर नामक जैन मन्दिर, है जिसे

गुर्जर वश के 'भीमाशाह' ने 15वी शती ई० के मध्य में बनवाया। यहाँ के वि० स० 1483 के एक लेख में कुछ भूमि व ग्रामों के दान दिये जाने का उल्लेख है, तथा वि० स० 1489 के एक अन्य लेख मे कहा गया है कि 'आबू के चौहान वन्शी राजा राजधर देवड़ा चुन्डा ने यहाँ के तीन उपरोक्त मन्दिरो की तीर्थ-यात्रा को आने वाले यात्रियों को सदैव के लिये कर से मुक्त कर दिया।'

इस मन्दिर के पित्तलहर नाम पडने का कारण यह है कि यहाँ आदिनाथ तीर्थकर की 108 मन पीतल की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा स० 1525 मे 'सुन्दर और गडा' नामक व्यक्तियो ने कराई थी। ये दोनो अहमदाबाद के तत्कालीन सुलतान महमूद बेगडा के मन्त्री थे। इस मन्दिर की बनावट भी पूर्वोक्त मन्दिरो जैसी है।

यहाँ भगवान् महावीर मन्दिर के मुख्य गणधर गौतम स्वामी की पीले पाषाण की मूर्ति है।

(4) चौमुखा मन्दिर:—

चौमुखा मन्दिर मे भगवान् पार्श्वनाथ की चतुर्मुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर 'खरतर वसही' भी कहलाता है। कुछ मूर्तियो पर के लेखो से इस मन्दिर का निर्माण-काल वि० स० 1515 के लगभग प्रतीत होता है। यह मन्दिर तीन तल्ला है, और प्रत्येक तल पर भगवान् पार्श्वनाथ की चौमुखी मूर्ति विराजमान है।

(5) महावीर मन्दिर:—

देलबाडा से पूर्वोत्तर दिशा मे कोई पाच किमी. की दूरी पर यह मन्दिर स्थित है। इसका निर्माण 15वी शताब्दी से हुआ था। इसमें आदिनाथ, शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थकरो की मूर्तिया है, किन्तु मन्दिर की ख्याति महावीर नाम से ही है। अनुमानतः बीच में कभी

अन्यत्र किसी भी तीर्थ क्षेत्र मे नही है। वर्तमान मे वहाँ पाए जाने वाले मदिरो मे सबसे प्राचीन उन्ही विमल शाह का है जिन्होने आबू पर विमल वसही मन्दिर बनवाया। दूसरा मन्दिर राजा कुमार पाल का बनवाया हुआ है।

यहा 500 से भी अधिक जैन मन्दिर हैं जिनमे 5000 मूर्तियाँ तीर्थंकरो की स्थापित है।

रचना, शिल्प व सौदर्य मे ये मन्दिर देलवाडा मन्दिरो का अनुकरण ही है।

18 गिरनार

सौराष्ट्र का दूसरा महान तीर्थ क्षेत्र है गिरनार। इस पर्वत का प्राचीन नाम 'ऊर्जयत' व 'रैवतिक' गिरि पाया जाता है जिसके नीचे बसे हुए नगर का नाम गिरिनगर रहा होगा जिसके नाम से अब स्वय पर्वत ही गिरिनार (गिरिनगर) कहलाने लगा है।

जूनागढ से इस पर्वत की ओर जाने वाले मार्ग पर ही वह इतिहास प्रसिद्ध विशाल शिला मिलती है जिस पर अशोक, रुद्रदामन और स्कदगुप्त सम्राटो के शिलालेख खुदे हुये हैं और इस प्रकार जिस पर 1000 वर्ष का इतिहास लिखा हुआ है।

जूनागढ़ के समीप ही धरसेनाचार्य की चन्द्र गुफा है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार यह स्थान ऐतिहासिक व धार्मिक दोनो दृष्टियो से प्राचीन सिद्ध होता है।

गिरिनगर पर्वत का जैन धर्म से इतिहासातीत सम्बन्ध इस लिये पाया जाता है क्योकि यहाँ पर ही बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ ने तपस्या की थी और निर्वाण प्राप्त किया था।

इस तीर्थ का सर्व प्राचीन उल्लेख स्वामी समतभद्रकृत बृहत्स्व-यम्भू स्तोत्र (5वी शती) मे मिलता है जिसमे नेमिनाथ भगवान् की स्तुति की गई है।

वर्तमान मे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध विशाल व सुन्दर मन्दिर नेमिनाथ का है। इसका निर्माण चालुक्य नरेश जय सिंह के दण्डाधिप सज्जन ने खगार राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सम्वत् 1158 में कराया था। मन्दिर के प्रागण में कोई 70 देवकुलिकाएँ हैं। इनके बीच मन्दिर बना हुआ है जिसका मण्डप बडी सुन्दरता से अलकृत है।

यहाँ एक दूसरा उल्लेखनीय मन्दिर मल्लिनाथ तीर्थंकर का है जिसे मत्री वस्तुपाल ने बनवाया था।

गोम्मटेश्वर (श्रवणबेलगोल)

मैसूर से 100 किलोमीटर की दूरी पर 4070 फुट ऊंची विध्य-गिरि पहाडी पर श्रवणबेलगोल मे गोम्मटेश्वर (बाहुबलि) की एक विशालकाय 57 फुट ऊँची प्रतिमा है जो पत्थर को काट कर बनाई गई है। इस मूर्ति की विशालता का परिमाण नीचे दिया जाता है।

ऊंचाई—57 फीट

कधो की चौडाई—26 ,,

पाव का अगूठा—$2\frac{3}{4}$,,

हाथ की मध्यमिका उंगली—$5\frac{1}{4}$,,

कान —$5\frac{1}{2}$.

कमर —10 ,,

यह नग्न पाषाण मूर्ति वर्षा, आँधी, सर्दी, गर्मी का मुकाबला करती हुई सीधी आकाश के नीचे खड़ी है। इसका मुख उत्तर को है 15 मील' की दूरी से भी यह मूर्ति अपनी छटा को लिये हुए स्पष्ट दिखाई देती है। पर्वत पर बनी 500 सीढ़िया पार करके यात्री इस मूर्ति की रचना, कला और सौष्ठव-सौदर्य को देख कर शातमनः हो कर आश्चर्य चकित होते हैं।

शिलालेख से मालूम होता है कि वीर सेनापति चामुन्डराय ने आचार्य नेमिचन्द की प्रेरणा से इसे निर्मित करवाया। यह राजा राजमल्ल या रच्चमल के मन्त्री भी थे। इस अद्भुत प्रस्तर प्रतिमा की प्रतिष्ठा 984 ई० मे की गई। इसके आसपास की निर्मितिया सन 1161 की है।

——o——

अध्याय

16

जैन चित्र कला

(1) उडीसा में भूवनेश्वर (भुवनेश्वर) के निकट प्रथम शताब्दी ई. पू की जैन गुफाओ में चित्रकारी के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। सम्राट् खारवेल के (161 ई. पू.) हाथी गुफा के शिलालेख में जैन चित्रकला का वर्णन आता है।

(2) तजोर के निकट सित्तनवासल (सिद्धानाँवास:) में सातवी शताब्दी की जैन चित्रकारी के कुछ नमूने देखने को मिलते हैं। सित्तन-वासल के जैन गुफा मन्दिर मे इसकी दीवालों पर पल्लव राजाओं की शैली के चित्र है, जो तमिल सस्कृति और साहित्य के महान् संरक्षक व प्रसिद्ध कलाकार राजा महेन्द्र वर्मा प्रथम (600—625ई०) के बनवाये हुए है।

यहा अब दीवारो और छत पर सिर्फ दो चार चित्र ही कुछ अच्छी हालत में बचे हैं। इनकी विशेषता यह है कि बहुत थोड़ी, किन्तु स्थिर और दृढ़, रेखाओं में अत्यन्त सुन्दर आकृतिया बड़ी होशियारी के साथ बनाई गई है जो सजीव सी जान पड़ती हैं। गुफा में "समव-सरण की सुन्दर रचना चित्रित है। सारी गुफा कमलों से अलकृत है। खम्भो पर नर्तकियों के चित्र है। बरामदे की छत के मध्य भाग में पुष्करिणी का चित्र है। जल में पशु पक्षी विहार कर रहे है। चित्र के दाहिनी ओर तीन मनुष्याकृतियाँ आकर्षक और सुन्दर हैं।

गुफा में पर्यक मुद्रा में स्थित पुरुष प्रमाण अत्यन्त सुन्दर पाँच तीर्थकर-मूर्तियाँ हैं। पल्लवकालीन चित्र भारतीय विद्वानो के लिए अध्ययन की वस्तु है।

(3) तिरुपुरुत्तिकुनरम् या जिन-काची (काजीवरम) के प्राचीन जैन मन्दिर में सुन्दर चित्रो के कुछ अवशेष अब भी देखने को मिलते हैं।

(4) श्रवणबेलगोल की जैन बस्ति के भित्ति चित्र भी अपनी शोभा लिये हुए है।

सित्तनवासल के बाद जैन धर्म से सम्बद्ध चित्रकला के उदाहरण दसवी शताब्दी से लगाकर पद्रहवी शताब्दी तक मिलते है। विद्वानो का कहना है कि इस मध्यकालीन चित्रकला के अवशेषो के लिये भारत "जैन भण्डारी" है, क्योकि प्रथम तो इस काल मे प्रायः एक हजार वर्ष तक जैन धर्म का प्रभाव एक बहुत बड़े भाग में फैला हुआ था। दूसरे, जैनो ने बहुत बड़ी सख्या में धार्मिक ग्रथ ताड़पत्रो पर लिखवाये और चित्रित करवाये थे।

ताड़पत्रीय चित्र—

(1) सब से प्राचीन चित्रित ताड़पत्र ग्रथ दक्षिण मे मैसूर राज्य मे "मूड़बिद्री" तथा उत्तर मे "पाटन" (गुजरात) के जैन भन्डारो में मिले है।

मूड़बिद्री में षटखण्डागम की ताड़पत्रीय प्रतियाँ, इसके ग्रथ व चित्र दोनों दृष्टियों से बड़ी महत्वपूर्ण हैं। सन् 1113 ई. में लिखी गई एक प्रति मे पाच ताड़पत्र सचित्र है इनमें दो ताडपत्र तो पूरे चित्रो से भरे है, दो के मध्य मे लेख है, और दोनो तरफ कुछ चित्र है। इन ताड़पत्रो पर चक्र आकृति, कोणाकृतियाँ चौकोण आकृतियाँ, गोलाकृतिया, पद्मासन-जिन-मूर्तिया, सात-सात साधु नाना प्रकार के आसनो व हस्तमुद्राओ सहित चित्रित है।

(2) उक्त चित्रों के समकालीन "पश्चिमी जैन शैली" की चित्र

कला के उदाहरण "निशीथ चूर्णि,, की "पाटन के संघवीगाडा के भन्डार में सुरक्षित ताडपत्रीय प्रति में मिलते हैं। यह प्रति उसकी प्रशस्ति अनुसार भृगुकच्छ (भड़ौच) में सोलंकी नरेश जयसिंह (1094 से 1133 ई०) के राज्यकाल में लिखी गई थी। इसमें सुन्दर चक्राकार आकृतियां बहुत हैं।

(3) सन् 1127 ई० में लिखित खम्भात के "शान्तिनाथ जैन मन्दिर' में स्थित नगीनदास भन्डारी की "ज्ञातधर्म" सूत्र की ताड़पत्रीय प्रति के पद्मासन महावीर तीर्थंकर के आसपास चौरी वाहको सहित, तथा सरस्वती देवी का अभंग चित्र उल्लेखनीय है। देवी चतुर्भुज है।

(4) बडौदा जनपद के अंतर्गत छाणी के जैनी भन्डार की "ओघ निर्युक्ति, की ताडपत्र पर बनी प्रति (सन् 1161) के चित्र विशेष महत्व के हैं। इनमे 16 विद्यादेवियो तथा अन्य देवियों और यक्षो के सुन्दर चित्र उपलब्ध हैं।

(5) सन् 1288 में लिखित सुबाहु कथादि "कथा संग्रह" की ताड़पत्र की प्रति मे 23 चित्र है जिनमें से अनेक अपनी विशेषता रखते है। एक मे भगवान् नेमिनाथ की वर यात्रा का सुन्दर चित्रण है। कन्या राजमती विवाह मन्डप में बैठी है, जिसके द्वार पर खडा हुआ मनुष्य हाथी पर बैठे नेमिनाथ का हाथ जोड़ कर स्वागत कर रहा है। नीचे की ओर मृगाकृतियाँ बनी हैं। चित्र बलदेव मुनि के है। एक में वे एक वृक्ष के नीचे मृग सहित खडे हुए रथवाही से आहार ग्रहण कर रहे है।

रंगो का प्रयोग

सन् 1350-1450 ई० के बीच में ताडपत्रीय चित्रों में सौदर्य की दृष्टि से कुछ विशिष्टता देखी जाती है। आकृति-अंकन अधिक सूक्ष्मतर व कौशल से हुआ है। आकृतियो मे विषय की दृष्टि से

तीर्थंकरो के जीवन की घटनाए भी अधिक चित्रित हुई है, और उनमें विवरणात्मकता लाने का प्रयत्न दिखाई देता है । रग लेप में विचित्रता और चटकीलापन आया है । इसी काल मे सुवर्ण रग का प्रयोग प्रथम बार दृष्टिगोचर होता है । यह ईरानी चित्र कला (मुगल शैली) का प्रभाव है ।

6. उपर्युक्त शैली (सुवर्ण रग) की प्रतिनिधि रचनाए अधिकाश कल्पसूत्र की प्रतियों में पाई जाती है, जिसमे सबसे महत्वपूर्ण ईडर के आनदर्जा मगलजी पेढी के ज्ञान भन्डार की वह प्रति है जिसमे 34 चित्र है, जो महावीर के और कुछ पार्श्वनाथ व नेमिनाथ तीर्थंकरो की जीवन घटनाओ से सम्बन्ध है । इसमे स्वर्ण रग का प्रथम प्रयोग हुआ है, आगे चलकर तो ऐसी रचनाएँ भी मिलती है, जिनमें न केवल चित्रो मे ही सुवर्ण रग का प्रचुर प्रयोग है, किन्तु समस्त ग्रथ-लेख ही सुवर्ण की स्याही से किया गया है । अथवा समस्त भूमि ही सुवर्ण-लिप्त की गई और उस पर चाँदी की स्याही से लेखन किया गया है ।

कल्पसूत्र की आठ ताड़पत्र तथा बीस कागज की प्रतियों पर से लिये हुए कुछ 374 चित्रों सहित कल्पसूत्र का प्रकाशन भी हो चुका है । (पवित्र कल्पसूत्र अहमदाबाद, 1952)

प्रोफेसर नार्मन ब्राउन ने अपने "दि स्टोरी आफ कालक" (वाशिगटन, 1933) नामक ग्रन्थ में 39 चित्रों का परिचय कराया है ।

साराभाई नवाब ने अपने कालक कथा सग्रह (अहमदाबाद, 1958) में 6 ताड़पत्र और 9 कागज की प्रतियो पर से 88 चित्र प्रस्तुत किये हैं ।

डा० मोती चन्द ने अपने 'जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्राम वैस्टर्न

इन्डिया' (अहमदाबाद, 1949) में 265 चित्र प्रस्तुत किये है ।

उपर्युक्त महान् अन्वेषको ने जैन चित्रकला का अति महत्वपूर्ण आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

कागज पर चित्रकला

कागज का आविष्कार चीन देश से ई० 105 में हुआ माना जाता है । 10वी—11वी शती मे उसका निर्माण अरब देशों में होने लगा और वहाँ से भारत मे आया ।

(1) जैसलमेर के जैन भण्डार से 'ध्वन्यालोक लोचन' को उस प्रति का अन्तिम पत्र मिला है जो जिनचन्द्र सूरि के लिये लिखी गई थी, जिसका लेखन-काल 1660 ई० के लगभग है ।

(2) 'कारन्जा जैन भण्डार' से उपासकाचार (रत्नकरण्ड-श्रावकाचार) की प्रभाचन्द्र कृत टीका सहित कागज की प्रति का लेखन-काल स० 1415(सन् 1358) है ।

किन्तु कागज की सबसे प्राचीन चित्रित प्रति [ई० सन् 1427 में लिखित वह 'कल्पसूत्र है जो लन्दन की इन्डिया आफिस लायब्रोरी में सुरक्षित है । इसमें 31 चित्र है और उसी के साथ जुड़ी हुई कालकाचार्य कथा में अन्य 13 चित्र । इस ग्रन्थ के समस्त 113 पत्र (pages) चाँदी की स्याही से काली व लाल पृष्ठभूमि पर लिखे गये है । इस प्रति के हाशियो पर शोभा के लिये हाथियों व हन्सो की पक्तिया, फूल पत्तिया अथवा कमल आदि बने हुए है ।

(3) लक्ष्मण गणी कृत 'सुपासणाह चरिअ' की एक सचित्र प्रति पाटन के श्री हेम चन्द्राचार्य जैन भन्डार में स० 1479 (ई० 1422 मे प० भावचन्द्र के शिष्य हरिनन्द मुनि द्वारा लिखित है । इसमें कुल 37 चित्र है जिनमे से 6 पूरे पत्रो में व शेष पत्रों के अर्द्ध व तृतीय

भाग में बने हुए हैं। इनमें सुपार्श्व तीर्थंकर के अतिरिक्त सरस्वती, मातृ स्वप्न, विवाह, समवसरण, देशना आदि के चित्र बड़े सुन्दर है। इसके पश्चात् कालीन कल्पसूत्र की अनेक सचित्र प्रतियां नाना जैन भण्डारो मे पाई गई है। जिन में विशेष उल्लेखनीय बडौदा के 'नरसिहजी भण्डार' मे सुरक्षित है। यह प्रति यवनपुर (जौनपुर उ० प्रदेश में हुसैन शाह के राज्यकाल में वि० स० 1522 में, 'हर्षिणी श्राविका' के आदेश से लिखी गई थी। इसमे 86 पृष्ठ है और 'समस्त लेखन सुवर्ण स्याही से हुआ है।

अन्य विशेष उल्लेखनीय कल्पसूत्र की अहमदाबाद के 'देवसेनपाड़ा' की प्रति है, जो भडौच के समीप गन्धार बन्दर के निवासी साणा और जूठा श्रेष्ठियो के वन्शजों द्वारा लिखाई गई थी। यह भी 'सुवर्ण स्याही' से लिखी गई है। कला की दृष्टि से इमके कोई 25-26 चित्र सर्वश्रेष्ठ माने गये है, क्योकि इन में 'भरतनाट्यशास्त्र' मे वर्णित नाना नृत्य मुद्राओ का अंकन पाया जाता है। एक चित्र में महावीर द्वारा चन्डकोशिक नाग के वशीकरण की घटना दिखाई गई है।

(4) दिल्ली के शास्त्र भण्डार में पुष्पदन्त कृत अपभ्रन्श' महापुराण' की एक प्रति है जिसमे सैकडो चित्र तीर्थंकरो के जीवन की घटनाओ को प्रदर्शित करने वाले विद्यमान है।

(5) नागौर के शास्त्र भडार में एक 'यशोधर चरित्र की प्रति है, जिसके चित्रो की उसके दर्शपो ने बडी प्रशंसा की है।

(6) नागपुर के शास्त्र भडार से 'सुगन्ध दशमी' कथा की एक प्रति मिली है, जिसमें उस कथा का उद्धृत करने वाले 70 से अधिक चित्र हैं।

(7) बम्बई के पन्नालाल जैन सरस्वती भवन में भक्तामर

स्तोत्र प्रति है, जिसमें लगभग 40 चित्र है। इन चित्रों में आदिनाथ तीर्थकर का चतुर्मुख कमलासन प्रतिबिम्ब भी है।

(8) नेमिचन्द्र कृत 'त्रिलोकसार' की सचित्र प्रतियाँ मिलती हैं, जिनमे नेमिचन्द्र व उनके शिष्य महामन्त्री चामुण्डराय के चित्र पाये जाते है।

काष्ठ चित्र

जैन शास्त्र भण्डारों मे काष्ठ के ऊपर भी चित्रकारी के कुछ नमूने प्राप्त हुए है। ये काष्ठ आदितः ताड़पत्रो की प्रतियों की रक्षा के लिये उनके ऊपर नीचे रखे जाते थे।

(1) एक चित्र जैसलमेर के ज्ञान भण्डार से मुनि जिन विजय को प्राप्त हुआ है। यह 27"×3" है। रग ऐसे पक्के हैं कि पानी से धुलते नहीं। पट के मध्य में एक मन्दिर आकृति है, जिसमें जिन मूर्ति विराजमान है। चित्र के दोनो ओर व्याख्यान सभा हो रही है।

(2) इसी भन्डार में से 30"×3" एक और सचित्र काष्ठ पत्र मिलता है। इस में वादिदेवसूरि और आचार्य कुमुद चन्द्र के बीच हुए शास्त्रार्थ सम्बन्धी नाना घटनाओ का चित्रण किया गया है।

(3) श्री साराभाई नवाब के सग्रह में एक 12 वी शती का काष्ठ पत्र 30"×2¾" मिला है, जिसमे भरत और बाहुबलि के युद्ध का विवरण चित्रित हैं। इसमें हाथी, हस, सिंह, कमलपुष्प आदि के चित्र बहुत सुन्दर बने है।

(4) वि० सं० 1456 मे निम्नलिखित "सूत्र कृताग वृत्ति" की ताड़पत्रीय प्रति का काष्ठपट 34½"×3" महावीर तीर्थंकर की घटनाओ से चित्रित पाया जाता है।

(5) सन् 1425 मे लिखित 'धर्मोपदेशमाला' का काष्ठ-पट 35"¼×3"¼ मिला है, इसपर पार्श्वनाथ की जीवन घटनाएं चित्रित है ये सभी काष्ठ पत्र पश्चिमी जैन शैली के है।

वस्त्र पर चित्रकारी

वस्त्र पर चित्र बनाने की कला भारत में बड़ी प्राचीन है। पालि-ग्रथो व जैन आगमो में इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं।

(1) भगवान् महावीर का शिष्य मखली गोशाल (जो पश्चात्

उनका विरोधी बन गया था) दीक्षित होने से पूर्व तथा उसका पिता दोनो चित्र-पट दिखा कर जीविका कमाया करते थे। किन्तु वस्त्र बहुत नश्वर द्रव्य है। इसलिए स्वभावत: बहुत प्राचीन उदाहरण उपलब्ध नही है। फिर भी 14वी शती से आगे के अनेक सचित्र जैन वस्त्र पट पाये जाते है।

(2) एक चितामणि नामक वस्त्र पट पर 19½" × 17½" वि. स० 1411 (सन् ई० 1354) का बना बीकानेर निवासी श्री अगर चद नाहटा के सग्रह में है। इसमें पद्मासन पार्श्वनाथ, उनके यक्ष-यक्षिणी, धरणेंद्र-पद्मावती तथा चौरी वाहको का चित्रण है। ऊपर की ओर पार्श्व-यक्ष और बैरोट्या देवी तथा दो गधर्व भी बने हुए हैं। नीचे तरुण प्रभाचार्य और उनके दो शिष्यो के चित्र हैं।

(3) ऐसा ही एक मत्र-पट श्री साराभाई नवाब के संग्रह में है, जिसमें महावीर के प्रधान गणधर गौतम स्वामी कमलासन पर विराजमान हैं, और उनके दोनो ओर मुनि स्थित हैं। मन्डल के बाहर अश्वारूढ़ काली तथा भैरव एवं धरणेंद्र एवं पद्मावती के भी चित्र हैं। चित्रपट भावदेव सूरि के लिये वि० स० 1412 में बनाया था।

(4) एक जैन वस्त्र-पट डा. कुमार स्वामी के संग्रह मे है जो उनके मतानुसार 16वी शती का है। डा० मोती चद इसे 15वी शती का मानते हैं। पट के वाम पार्श्व में पार्श्वनाथ के समवसरण की रचना है। इसके दायें-बाये यक्ष-योगिनियो की आकृतियो के अतिरिक्त ओंकार की पांच आकृतिया चंद कला की कृति पर आसीन सम्भवत: पाँच सिद्ध तथा सुधर्मा स्वामी और नव ग्रहों के चित्र हैं। पट के मध्य मे पार्श्वनाथ की प्रतिमा ध्वजायुक्त व शिखर-बद्ध मन्दिर में विराजमान की गई है। अनुमानत: यह मन्दिर शत्रुंजय का है, और वे पाँच सिद्धमूर्तियाँ पाँच पाँडवों की है, जिन्होने शत्रुंजय से मोक्ष प्राप्त किया था।

ऐसे और भी अनेक वस्त्र पट प्राप्त हुए हैं। इनका उपयोग सम्भवत: उपासना व ऋद्धि सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता था किन्तु कला की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है।

ॐ शान्ति

तुही जिनेश बुद्ध है,
सुबुद्धि के प्रमान तैं,
तुही जिनेश शंकरो,
जगत्त्रयी विधान तैं।
तुही विधात है सही,
सुमोख पंथ धार तैं,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध,
अर्थ के विचार तैं।